अंश-पूर्ण योग

और

उस के साधन

ज़र्रा २ में निहां, मैंने राधास्वामी देखा।
हर जगह और हर मुकां में अयां, मैंने राधास्वामी देखा।
कुल जहां में ज़ात और सिफात का है, हर दम ज़हूर।
इस जहां की रूहे रवां. मैंने राधास्वामी देखा।

राधास्वामीमत

के

हिदायत नामा की अद्भुत व्याख्या

परम संत परम दयाल पं० फकीर
चन्द जी महाराज द्वारा रचित

दो शब्द

हज़ूर परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज द्वारा लिखी गई पुस्तक "जीवन क्या है" "मानव मन्दिर" मई सन १९७७ ई० के अंक में प्रकाशित हो चुकी है। इसके पृष्ट १७६ पर" "हिदायतनामा" नामी पुस्तक का उल्लेख आता है। कई सज्जनों ने यह पुस्तक मांगी है, किन्तु यह भी हज़ूर परम दयाल जी महाराज की पुरानी रचनाओं में से एक है और वह भी सन १९४० ई० में उर्दू भाषा में लिखी गई थी, जिसकी एक प्रति हमारी लायब्रेरी से मिल गई। इसलिए इस को भी मानव मन्दिर में प्रकाशित करना ज़रूरी समझा गया।

इस पुस्तक को ध्यान पूर्वक पढ़ने और निष्कर्ष ज्ञात होने के पश्चात इस का नाम "अंश पूर्ण योग और उसके साधन" रखना उप्युक्त समझा गया ताकि पढ़ने वाले केवल नाम से ही उस अवस्था का संस्कार ग्रहण कर सकें जिस में अंश (जुज़) पूर्ण (कुल) में मिल जाना है।

इस पुस्तक में हज़ूर परमदयाल जी महाराज ने गूढ़ और मर्मभेदी रहस्यों को संतमत की मर्यादा द्वारा अपने अनुभव के आधार पर खोला है। उनकी वर्तमान अवस्था और खोज सन १९४० ई० से कहीं बढ़ कर है। अब यह संतमत की सच्चाई को अपने अनुभव और विज्ञान के आधार पर सिद्ध करते हैं ताकि वर्तमान युग के सर्व साधारण व्यक्ति जो साईन्स में विश्वास रखते हैं, उनका पूर्ण रूप से समाधान हो सके।

यह पुस्तक प्रश्नोत्तर विधि से लिखी हुई है। यह विधि प्राचीन ऋषियों और सन्तों ने भी अपनाई क्योंकि यदि संश्य उठें तो उनका समाधान आवश्यक है। इसी को गुरु और चेला कहते हैं। संश्य और समाधान के सिलसिले में धीरे धीरे संश्य उठने बन्द हो जाते हैं। समाधान की उस अवस्था, जिस में संश्य उत्पन्न न हों, को ही समाधि कहा गया है।

इस विधि के अन्य लाभ भी हैं जो कि निम्नलिखित हैं :--

१. कई सज्जनों के अन्तर संश्य तो उठते हैं किन्तु वह उनको अन्तर में ही दबा कर जिस मार्ग, पंथ या

धर्म के वह अनुयायी होते हैं, अन्ध विश्वास रखते हुये अपने ही हाल में मस्त रहते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने मान प्रतिष्ठा की हानि के डर से भी कि लोग उनको संश्यात्मक बुद्धि वाले कहेंगे और अपने गुरु से विमुख हुआ समझेंगे, अपने संश्य व्यक्त नहीं करते। इस वर्ग के व्यक्ति प्रश्नोत्तर विधि से लिखी गई पुस्तक को पढ़कर, दूसरों के अन्तर उठने वाले संश्य और उनके समाधान से लाभ उठा कर आज़ाद ख्याल बन सकते हैं और निश्चयात्मकता को प्राप्त कर सकते हैं।

२. जिन लोगों के अन्तर संश्य व भ्रम उत्पन्न होते हैं और उनकी शान्ति को भंग करते हैं, ऐसे लोग यदि उनको किसी महापुरुष का सत्संग उपलब्ध न भी हो तो इस प्रकार के साहित्य को पढ़कर शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

हज़ूर परम दयाल जी महाराज ने इस पुस्तक में अपने अनुभव को अतिगूढ़ शब्दों में व्यक्त किया है। इसका अनुवाद करने में या छपने में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो हम क्षमा चाहते हैं।

सेक्रेटरी :—मानवता मन्दिर होशियारपुर।

भेंट

ऐ ज़ाते हक्क ! परम तत्व !! तू मुझ से जुदा न था। मैंने भ्रम में आकर तेरी तलाश की, यही तलाश मुझे तेरे पन्थ में लाई और तू ने दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी के रूप में बैठ कर मुझे अपना पता दिया। वास्तव में तेरा ही हर जगह ज़हूर है।

—❖—

तेरे पन्थ में आकर हिदायतनामा की पवित्र बाणी सुनी, ढूंडा, तलाश किया और जो कुछ समझा तेरे ही अर्पण है। मैं तुझे हर सच्चे सन्त और फकीर में देख कर नमस्कार करता हूं।

—❖—

जब तू दयाल महर्षि जी के वजूद में गिदड़वाहा स्टेशन पर प्रेमवश हो कर मेरे हां आया, तो तू ने ही हुक्म दिया था कि प्रेम को देश के हवाले करो। मगर देश को प्रेम की ज़रूरत नहीं क्योंकि उस में

काल का ज़ोर है, मनमत है और ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई झगड़ा आदि इस का स्वभाव हो गया है। यहां प्रेम का अपमान होगा, मगर तेरा आदेश सिर आखों पर जब तक जीवन है स्वार्थ को न अपनाते हुए यह प्रेम निःस्वार्थ रूप में देश की सेवा करेगा। क्योंकि तेरा पवित्र वजूद, जिसे विश्वास करने वाले व्यक्ति राधास्वामी दयाल के नाम नामी से याद करते हैं, जन्मअष्टमी के दिन प्रकट हुआ था इसलिये तेरी बाणी का अक्स हिदायतनामा की व्याख्या, उसी दिन की यादगार में, तेरी भेंट करता हूं और साथ ही यह भी बिनती है :-

हो जाऊं गुम किसी को न मेरा पता मिले।
मुझ को खुद अपनी ज़ात की भी जुस्तुजू न हो॥

दास :—(दयाल) फकीर

ता० 26 अगस्त 1945 जन्मअष्टमी

भूमिका

इन्सान भ्रम में आकर यह सोचता है कि वो सब काम दूसरों ही के लिये करता है और सर्व साधारण भी इसे ऐसा ही समझते हैं मगर वास्तव में यह बात नहीं। हर एक जीव उस हस्ती को प्रकट करने के लिये विवश है जो उस के अन्तर मौजूद है। जो जैसा है वो वैसा ही करता, कहता और सोचता है। सूर्य गरमी देने के लिये विवश है, हवा चलने में पाबन्द है। प्रकृति की सारी शक्तियां अपनी अपनी बनावट के अनुसार अपना अपना काम करने के लिये विवश हैं। इसी प्रकार हर इन्सान जैसा है अर्थात बाहर के प्रभाव, संगत और शिक्षा के प्रभावाधीन जिस प्रकार के विचारों को उस ने पकाया हुआ है वो वैसा ही करेगा। यह रचना वास्तव में कर्ता पुरुष या काल पुरुष की क्रीड़ा मात्र है और हम तुम सब उस के हथियार हैं।

करे करावे आपे आप, मानुष देह के कुछ नाहीं हाथ ।
(गुरु नानक साहिब)

इन्सान केवल अहंता और ममता के कारण यह सोचता है कि मैंने फलां काम किया, करता हूं या करूंगा और इसी अहंभाव के कारण वो दुख सुख और हर्ष शोक का शिकार होता रहता है और ऐसा होना भी अनिवार्य है। क्योंकि द्वन्द की अवस्था या काल की रचना में समानता प्राकृतिक रूप से कठिन है और अवस्था के बदलने में विकार का आना लाज़मी नियम है। स्वाभाविक जीवन में न कहीं दुख है और न सुख बल्कि वो एक खेल है। मगर जब इन्सान इस अहंगता के जाल में फंस कर दुख सुख के झकोले खाने लगता है तो घबरा कर उस अवस्था से मुक्ति पाने की इच्छा करता है। इस अवस्था में भी यही अहंता या खुदी उसकी सहायक बन कर मानवीय सुरत को उसकी अपनी असली अवस्था की ओर ले जाती है। जिस के नाम मोक्ष,शान्ति, बेचिन्त पना, निज धाम या सत लोक आदि रखे हुए हैं।

मैं भी बचपन में इसी अहंकार से दुखी होकर छुटकारा पाने का इच्छुक हुआ। हिन्दु जाति में

ब्रह्मण के घर पैदा होने के कारण इस दुनियां के आधार मालिक या भगवान का संस्कार मिला और सुन रखा था कि जब किसी व्यक्ति को खुदा, मालिक या राम (चाहे कोई और नाम रख लो) मिल जाता है तो उसके सारे दुखों का अन्त हो जाता है। इसी विचार के प्रभावाधीन मेरे मन में उससे मिलने की धुन पैदा हुई। दिली कुरीद अथवा शौक के जज़्बा ने स्वप्न द्वारा मुझे यह विश्वास दिलाया कि मालिक तेरे उद्धार के लिये दयाल मर्हिष शिवब्रत लाल जी वर्मन के रूप में आया हुआ है। शुरू शुरू में मेरा यह ख्याल रहा है कि इस से पूर्व मुझे उस पवित्र पुनीत विभूति के नाम का पता ही न था, मगर निजी अनुभव के आधार पर अब मैं यह कहने का साहस करता हूं कि मैंने पहले इस पवित्र नाम को ज़रूर ही सुना होगा, क्योंकि बिना जाग्रत में ख्याल या संस्कार लिये कोई चीज़ स्वप्न में नहीं आ सकती। मैं भी इसी प्रकार जैसे कि ऊपर वर्णन कर रहा था अपने ख्याल की प्रबल शक्ति के प्रभावाधीन उस के मिलने के लिये जनूनी हो गया (चाहे इस हालत का नाम प्रेमी या भक्त की हालत रख लो) और लगातार

नौ महीने तक उस मालिक को खत लिखता रहा मगर कोई उत्तर न आया। इस के बाद उस पवित्र विभूति ने पत्र द्वारा लिखा कि मैं तुम्हारी भावनाओं का आदर करता हूं। तुम स्वतः सन्तों में चान्द हो चाहे अभी नहीं जानते। मैंने सच्चाई की शिक्षा राधास्वामी मत में हज़ूर राय साहिब मालिग राम जो से पाई है अगर तुम्हें भी इस मत की शिक्षा से लाभ उठाने की इच्छा हो तो मेरे पास चले आओ।

उस समय मुझे राधास्वामी मत के विषय में कोई जानकारी न थी। मैंने समझा "राधा" नाम राधका जी का और "स्वामी" नाम कृष्ण जी का है! संक्षिप्त वृतान्त यह है कि मैं उस पवित्र पुनीत विभूति के चरण कमलों में हाज़र हुआ और प्रेम के आवेश में आ, उनके चरन कमलों को पकड़ कर बहुत रोया। उन्होंने मुझे दीक्षा दी और राधास्वामी सार बचन गद्य पढ़ने को दी जिसे शुरू से अन्त तक ध्यान पूर्वक पढ़ा। उसमें खण्डन बहुत था, मैंने प्रार्थना की कि महाराज! मालिक सब का है। जिस रूप में कोई उसे याद करता है वो उसी रूप में उसे मिलता है। यह

पुस्तक पढ़ी नहीं जाती, उस पवित्र विभूति ने फरमाया, छोड़ दो, जब समय आयेगा तब तुम कहोगे कि यह अथाह खज़ाना है और इस अनुभवी बाणी को समझ कर आनन्द से भरपूर हो जाओगे। फिर हुक्म दिया कि राधास्वामी मत के सत्संगों में जाया करो।

मैं पहले बहुत समय तक प्रेम और भक्ति की भावनाओं के प्रभावाधीन अपने आप को अन्तर में लीन करने का यत्न करता रहा। क्योंकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार की लहरें अधिक उठा करती थी, इसलिये उनके प्रभावों से बचने के लिये अधिकतर अन्तरमुखी होने का यत्न करता रहा और जीवन अनुभवों की नाना प्रकार की स्थितियों में से गुज़रता रहा। जहां कहीं राधास्वामी मत का सत्संग प्राप्त होता, जाता। मुझ पर अधितकर मस्ती की हालत बनी रहती थी और सिवाये प्रेम और भक्ति के जज़्वा में खेलने के और किसी बात में रुची न थी।

एक बार मलकवाल (पाकिस्तान) सत्संग में उपस्थित हुआ। वहां राधास्वामी मत वालों ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया और कहा कि तुम ग़लती

पर हो। मालिक की धार केवल सरकार साहिब, आचार्य राधास्वामी मत गाज़ीपुर के चोला में है। मुझे उस समय तक न राधास्वामी मत की शिक्षा की जानकारी थी और न असलियत का ज्ञान था, केवल प्रेम और भक्ति के ज़ज्बे का खेल खेला करता था। उनकी यह बातें सुन कर अत्यन्त दुखी हुआ। मैं आप मालिक को सबका मानता हूं और मानता था इसलिये मैंने प्रार्थना की कि मैं मालिक के नाम एक पत्र लिख देता हूं क्योंकि तुम्हारा, मेरा या सब दुनियां का मालिक एक है और मैं उस में कोई अन्तर नहीं समझता, इसलिए जो उतर तुम्हारा मालिक देगा वो मुझे स्वीकार है और मैंने वो पत्र रो कर दो घंटे में लिखा। उस समय मुझे यह भी याद नहीं कि उस में क्या कुछ लिखा था और उन सत्संगियों को दे दिया। पन्दरह दिन के बाद वे मुझे मिले और मैंने उनसे उत्तर के बारे पूछा, पता लगा कि परम पिता सरकार साहिब का चोला छूट गया है। उस दिन से मैंने राधास्वामी मत वालों से मेल मिलाप छोड़ दिया क्योंकि उन की घृणापूर्ण भावनाओं द्वारा मेरे दिल को बहुत ठेस लगी। इस के बाद पहली बड़ी लड़ाई

में, मैं बसरा चला गया। वहां उस मालिक या सत पुरुष से "जो मेरा ख्याली इष्ट था" मिलने की चाह से अपने अन्तर में लीन होने का यत्न करने लगा। और आनन्द की लहरों में "जो मेरे अपने ही ध्यान और ख्याल का परिणाम थो", भरपूर रहने लगा। दर्शनों के ख्याल से कभी कभी लाहौर दयाल जी के चरन कमलों में हाज़र हुआ करता था। एक बार निजरूप या मालिके कुल के असली मिलन की तड़प से दाता दयाल के चरन कमलों को पकड़ कर लगातार छः घंटे तक रोया। आप ने मुझे तिलक लगा दिया और फरमाया कि जाओ, बगदाद में तुम्हे आचार्य बना दिया गया। मैं दुखी हुआ और साथ ही कुछ खुश भी। दयाल जी ने पूछा कि ए फकीर! यह हर्ष व शोक केसा? प्रार्थना की, कि महाराज! मुझ में कोई योग्यता नहीं, न ही पवित्र जीवन है, भला मैं किसी को क्या लाभ पहुंचा सकूंगा। मैं तो आप मालिक या निजरूप के दर्शनों से वंचित हूं इसलिये दुखी हुआ। खुशी का कारण यह है कि मन में अहकार आ गया कि अब मैं कुछ बन गया हूं। आप ने फरमाया कि ए बावले फकीर!

प्रकृति ने मौज से तुम्हें मेरे पास भेजा है। जो सत्संगी भाई तुम्हारे पास आयेंगे वे पवित्र पुनीत विभूति का असली रूप होंगे और तुम्हारा उद्धार करेंगे।

मैंने निजी अनुभव के आधार पर जो कुछ समझा है उसे सच सच कहता हूं कि मैंने असली रहस्य इन सतगुरु स्वरूप सत्संगियों ही की सहायता से पाया है और जो भी जिज्ञासु इस इच्छा के लिये मेरे पास आता है, उस के सामने सचाई रखता हूं, जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे चल कर करूंगा और इसी समझ ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि राधास्वामी मत या संतमत सच्चा, उसकी शिक्षा सच्ची और उसकी बाणी सच्ची है।

क्योंकि यह पुस्तक "राधास्वामी सार बचन गद्य" मुझे शुरू में पाठ करने के लिये मिली थी, इसलिये आरम्भ से ही मेरी यह इच्छा रही कि जो कुछ इस में लिखा है उस का आप अनुभव करूं और विशेष रूप में यह ख्याल इसलिये भी प्रबल हो गया कि दयाल जी ने अपनी जगह का नाम राधास्वामी धाम रखा। इसी राधास्वामी मत के क्षेत्र में आने के कारण

आप बदनाम भी हुए, कष्ट उठाये, संसार की बुरी भली बातें सहन कीं, मगर जीवन भर इस मत की सेवा में व्यस्त रहे। जितना आप ने राधास्वामी मत जिसे मैं इस ससय मानवमत कहता हूं का काम किया वो किसी से छुपा नहीं। अब तक जो कुछ मैंने समझा है वो हिदायत नामा राधास्वामी मत की व्याख्या के सिलसिला में साफ साफ प्रकट करूंगा। यह व्याख्या उन राधास्वामी मत वालों के चरण कमलों में भेंट करता हूं जिनकी दया से मेरे मन की कुरीद मिटी और तलाश समाप्त हुई। मेरे जीवन का काम खतम होने वाला है। मैं प्रेम, श्रद्धा और भक्ति से अपने विचार उनको अर्पण करता हूं जिन के कारण संत मत को सच्चा पाया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो सज्जन भी चाहे वो मुझ जैसा भ्रमग्रस्त और कमज़ोर दिल वाला ही क्यों न हो, अगर सच्चे दिल से हकीकत का जिज्ञासु होगा और कि जिस ने इस धुन में प्रेम, भक्ति, कर्म, धर्म, ज्ञान, ध्यान का सौदा खरीदा हुआ है, मेरी इस रचना को पढ़ कर, सार भेद या असली रहस्य, जिसे सतपुरुष राधास्वामी दयाल, कबीर साहिब, नानक साहिब,

दयाल महर्षि जी महाराज और अन्य सन्तों और फकीरों ने हम भूले भटके प्राणियों के लिये प्रकट किया है, से जानकार हो कर जीवन मुक्त या सन्त गति में आयेगा, ज़रूर आयेगा, ज़रूर आयेगा। इस रचना का केवल इतना ही उद्देश्य और आदर्श है और बस। वास्तव में इस के लिखने का तात्पर्य स्वभाविक विवशता है, जैसा कि मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूं।

संसार में दो ही कारण हैं जिनकी वजह से इन्सान खुदा, मालिक या धार्मिक शिक्षा की ओर झुकता है। पहला कारण सांसारिक आवश्यकतायें, धन मान प्रतिष्ठा आदि की इच्छा। दूसरी, मन की शान्ति, उदर पूर्ति, सुख, मालिक का मिलना, मुक्ति (या कोई और नाम रखो) की इच्छा। दोनों ख़्याल वालों की सफलता के लिए भिन्न भिन्न उपाय हैं। जिन्हें मैं अपने अनुभव के आधार पर वर्णन करता हूं। पढ़ने वाले आप सोच सकते हैं कि इनमें कहां तक सच्चाई है!

१. सांसारिक सफलता। जब तक इन्सान भेद रख कर काम नहीं करेगा और नीति से काम नहीं लेगा।

या अन्य शब्दों में अपने रहस्य (राज़ को अपने दिल में नहीं रखेगा) वो सांसारिक जीवन में सफल नहीं हो सकता। संसार के हर व्यवहारिक काम में परदा ज़रूरी है।

२. अध्यात्मिक पूर्णता :- जहां अध्यात्मिकता की पूर्णता भी व्यवहारिक काम के साथ जोड़ी जाती है वहां भी नीति (*Policy*) का स्वभाविक ही प्रयोग करना दड़ता है। लेकिन क्या यह बुरा है ? "नहीं"। इसलिए कि व्यवहारिक या सांसारिक काम बिना नीति (*Policy*) के हरगिज़ नहीं चल सकते। मगर जहां असली सच्चाई, शान्ति, और अध्यात्मिक जीवन का प्रश्न है वहां भी अगर नीति (*Policy*) या पर्दादारी से काम लिया जायेगा तो इन्सान को असली सुख व शान्ति भाग्य में न आयेगी। क्योंकि अध्यात्मिकता, शान्ति, परमसुख या सत्य का भेद केवल उस व्यक्ति के भाग्य में आता है जो अपने आप को पूर्ण रूप से सच्चाई की मूर्ति बना लेता है और जब तक उसके अन्तर सच्चाई का जज़्बा न होगा और उसका स्वभाव सत्यप्रिय न होगा वह असली सुख, असली शान्ति को, जिसे प्राप्त करने के लिए

सन्तों और फकीरों ने अनेक यत्न किये हैं, प्राप्त न कर सकेगा और न मन की लालसा जा सकेगी। इसलिऐ जिसे जैसी आवश्यकता हो उसे वैसी ही कामना रख कर संसार में काम करना चाहिये। जहां गुरुवाद में संसारवाद अर्थात सांसारिक कामनायें सम्मिलित हो जाती हैं वहां पर नीति (*Policy*) से काम लेने के लिए व्यक्ति विवश है मगर परिणाम यह निकलता है कि सत्यप्रिय स्वभाव वाले व्यक्तियों का जो सच्चे सुख और शान्ति के जिज्ञासु होते हैं, हानि हो जाती है और यह हानि अनिवार्य है क्योंकि उन स्थानों में सच्चाई के वर्ताव से संसारवाद टूट जाता है इसलिए हर जगह पर्दादारी का होना ज़रूरी है क्योंकि जब दयाल जी ने मेरी शिक्षा को पूरा किया तो फरमाया :-

पर्दादारी राज़दारी बन गई शाने फकीर।

कबीर साहिब ने अपने गुरुमुख चेले धर्मदास को आदेश दिया था :-

धर्मदास तोहे लाख दोहाई सार भेद बाहिर नहीं जाई।

सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल ने भी अपने बचनों में इसी प्रकार किसी जगह फरमाया है :-

अगम का भेद छुपाऊंगी वहां का मर्म न गाऊंगी।

इसलिए असलियत और सच्चाई ब्यान करने में पर्दादारी से काम रहे। जिन सज्जनों को सच्चाई की समझ आ चुकी है। उन्हें चाहिये कि अधिकार और संस्कार का ध्यान रखते हुये बातचीत किया करें। यही कारण है कि यह असलियत सदा गुरु और शिष्य तक ही सीमित रही। अब क्योंकि फकीरी अधिकतर उदरपूर्ति का साधन बन गई है और अधिकारियों की हानि हो रही है इस लिए मैं केवल सच्चाई के प्रकट करने के लिए लेखनी उठाने पर विवश हूं। अगर किसी भाई को अब तक सच्चाई की समझ न आई हो, मगर जिज्ञासु हो तो वह मेरे इन लिखे गये विचारों का बार बार ध्यानपूर्वक अध्ययन करे। यह हकीकत का अपने ही रूप में यथार्थ चित्र है। फिर भी अगर भेद समझ में न आवे तो मुझे बड़ी खुशी से मिल सकता है, समझाने का यत्न किया जायेगा।

जो व्यक्ति रहस्य को गुप्त नहीं रखता वह महान अधम और नीच स्वभाव का होता है। मेरे लिखने का कारण केवल इतना है कि यह रहस्य

केवल अधिकारी पर खुलना चाहिये जैसा कि प्रकृति ने भी हर वस्तु को ढक कर रखा हुआ है। क्योंकि व्यवहारिक कर्मों के कारण या बनाये गये भिन्न २ दायरों के डर से वर्तमान समय के अनुभवी पुरुष और बज़ुर्ग, जाने या अनजाने रहस्य को नहीं खोल रहे, इसलिए मालूम होता है कि जब तक मेरा शरीर स्थित है, प्रकृति ने यह काम इस के सपुर्द किया है। अगर किसी भाई को लम्बा समय बीतने पर भी सच्चाई के रहस्य की समझ न आई हो तो फ़कीर का दरवाज़ा उस के लिए हर वक्त खुला है।

सलाहे आम है याराने नुत्कादां के लिऐ।

मैं आप व्यवहारिक कामों के विरुद्ध नहीं। कारण यह है कि बिना सांसारिक व्यवहार के जीवन अधूरा रहता है। परमार्थ और स्वार्थ साथ साथ चलने चाहिये। इसलिऐ सन्तों ने सत्संग को मुख्य रखा है ताकि इस द्वारा सच्चाई के रहस्य को समझ कर फिर इन्सान दुनियां में काम करे।

ऊपर लिखी परिस्थितियों के प्रभावाधीन मैं यह व्याख्या आप लोगों की सेवा में उपस्थित कर रहा हूं ताकि मुद्दतों से जिन सत्सगियों को तसल्ली नहीं

मिली, इसके अध्ययन से अपन भलाई का कारण पैदा कर सकते हैं या रहस्य को समझ कर अपना जीवन आराम से गुज़ारें। काम बिल्कुल सरल है। खेद है कि लोग इस आशा पर अपने जीवन गुज़ार रहे हैं कि मरने के वाद उन्हें राधास्वामी धाम या निज धाम प्राप्त होगा या मुक्ति मिलेगी। मैं समझता हूं कि जब इस जीवन में इच्छित वस्तु नहीं मिल सकी तो मरने के बाद क्या मिलेगी। यह केवल भ्रम है। इससे अधिक मेरे लिखने का कोई अभिप्राय नहीं।

आपका दास

(दयाल) फकीर चन्द स्टेशन मास्टर फरीदकोट

वर्तमान स्थान काशी नगरी फिरोजपुर शहर

हिदायतनामा[1]

वीच बयान सोहवत और खिदमत गुज़ारी[2] मुर्शिद कामल[3] के और शरह[4] दरजात फ़कीरी के और जिस में उपदेश शब्द के अभ्यास का और भेद शब्द मार्ग और उसके मुक़ामात का भी वर्णन किया है।

जिन लोगों को शौक मिलने मालिक कुल का है और तहक़ीक़ात मज़हब की मंजूर है कि कौन सा मज़हब सब से बाला[5] है और तारीक[6] भी उस का बहुत सीधा चाहते हैं, उन के वास्ते यह कलाम[7] कहा जाता है।

उनको चाहिये कि कुछ दुनियां की मुहब्बत कम करें यानी ज़र[8] और ज़न[9] और सन्तान की चाह प्रारब्ध के हवाले कर के अव्वल सुहबत फकीरों की मुकद्दम[10] रखें। फकीरों में सुहबत उस फकीर की करें जो शाग़िल[11] शग़ल[12] सुल्तानुल अज़कार[13] का होवे या शग़ल-नसीरा[14] करता होवे. यानी अनहद शब्द

---

1. उपदेश 2. सेवा 3. पूरे सतगुरु 4 बयान 5. ऊचा 6. रास्ता 7. वचन 8. धन 9. स्त्री 10. मुख्य 11. अभ्यासी 12. अभ्यास 13. सुरत शब्द 14. दृष्टि का साधन

के मार्ग को जानता होवे और दृष्टि की साधना जिस ने करी होवे और मर्दुमक-चश्म[1] यानी दोनों तिलों को खींच कर शग़ल[2] की मदद से एक किया होवे और आवाज़े-आसमानी को सुन कर रूह को चढ़ाता होवे और जो ऐसा फकीर कमयाब (दुर्लभ) हो तो ज़िक-रूल्क़लूब[3] पासे अनफ़ास[4] वालों को तलाश करे, उन की सुहबत से भी सफाई दिल और कमज़ोरी नफ़से-अम्मारा[5] की होगी और कुछ लज़्जत[6] अंदरूनी[7] हासिल होगी लेकिन जो फ़ायदा कि रूह के चढ़ाने का है वो तो तरीक़ सुल्तानुल अज़कार ही से हासिल होगा।

अब चाहिये कि ऐसे फकीर की खि़दमत में जा कर उनसे मुहब्बत पैदा करो और उनकी खि़दमत गुज़ारी में चुस्त व चालाक रहो और तन से, मन से, धन से ब हरसूरत उन को अपने ऊपर मेहरबान और मुतवज्जह कर लो और दर्शन उनका दिल और दीदा से (या आंख से) घंटे दो घंटे बराबर करते रहो यानी अपनी आंखों से उनकी आखों को ताकते रहो

1. आंख की पुतली 2. अभ्यास 3. नाम की ज़रब दिल पर लगाना 4. स्वांसा का अभ्यास 5. मलीन मन 6. रस 7. अंतरी।

और जिस कदर ताकत अपनी देखो पलक से पलक न लगाओ और इस अभ्यास या (मश्क) को रोज़ ज़्यादा करते रहो। जिस रोज़ और जिस वक्त नज़र-मेहर-आलूद (या मेहर से भरी हुई दृष्टि) उन की तुम पर पड़ेगी उसी दिन सफाई दिल की फौरन होगी और जब वह मेहर करके अपनी मौज व मरज़ी से शग़ल वाला (ऊपर ब्यान किये हुए) का उपदेश करें तो रूह तुम्हारी आवाज़ें-आसमानी को पकड़ेगी और मुनासिब है कि तुम भी इप अभ्यास को रोज़ मर्रा नित्तनेम से चार बार दोबार जिस क़दर फुरसत मिले करते रहो और जो दिल तुम्हारा क़बूल न करे और भरम और चिन्ता और गुनावन बे-फ़ायदा उठावे तो फर्याद मुर्शिद के आगे करो और फिर उसी शग़ल में मेहनत रखो। उनकी तवज्जह और तुम्हारी मेहनत से रोज़ बरोज़ तरक्की होगी और जल्दी और इज़्तिराबी[1] करना नहीं, क्योंकि 'ताजील कारे शयाती बुवद[2],' आहिस्ता आहिस्ता हासिल होना मुफीद पड़ेगा और जल्दी जो कुछ होगा, वह कायम नहीं रहेगा, क्योंकि वह शैतान की तरफ से होगा। जो मुर्शिद रहमान[3] की मदद से होगा।

1. बेचैनी 2. जल्दी शैतान का काम है 3. दयालु।

वह हमेशा कायम रहेगा। ज़ाहिर लवाज़मा[1] जो कुछ चाहिये सो मैं कह चुका। अब बातिनी[2] हाल कि जो दरजे फकीरों को हासिल हैं, उस को ब्यान करता हूं।

जिस वक्त निगाह तुम्हारी दिमाग[3] के भीतर उलट कर आसमान को देखेगी और रूह तुम्हारी देह को छोड़ कर ऊपर को चढ़ेगी तो तुमको आकाश नज़र पड़ेगा कि जिस में थाना सहस दल कंवल का है और हज़ारों पंखड़ियां उस की जुदा जुदा काम तीनों लोक का दे रही हैं। उस की सैर को देख कर तुम बहुत खुश होंगे और तीन लोक के मालिक का दर्शन पाओगे। और बहुत से मज़हब इसी मुकाम को पाकर और इसी को मालिक-कुल मान कर धोखा खा गये और नूर और तजल्ली[4] इस जगह की देख कर तृप्त हो गये, आगे चलने का रास्ता बंद हो गया, मुर्शिद आगे का उनको न मिला, जो मुर्शिद मिलता तो आगे का रास्ता खुलता, सो उससे आगे का हाल सुनो।

इस आकाश के ऊपर एक दरवाजा ऐसा बारीक और झीना है कि जैसे रौज़न[5] सूई के नाके का

1. सामान 2. अंतरी 3. मस्तक 4. प्रकाश 5. छिद्र

होता है। चाहिये कि उस रौज़न में अपनी रूह को प्रवेश करो[1] और आगे उस के बंक नाल टेढ़ा रास्ता कुछ दूर तक सीधा गया और फिर नीचा पड़ा और फिर ऊंचे को चढ़ा, उस नाल को पार करके दूसरे आसमान पर सुरत पहुंची।

उस आसमान पर एक मुकाम त्रिकुटी कि उस को मुसल्ली[2] कहते हैं। लाख जोजन वसीअ[3] और लाख जोजन तवील[4] है। उसमें लीला और तमाशे तरह व तरह के हैं। शरह[5] उस की कहां तक करूं मगर कुछ कहता हूं कि हज़ार आफताब[6] और हज़ार माहताब[7] उस की रोशनी से ख़जिल[8] हैं और आवाज "ओं ओं" और "हू हू" और बादल की सी गरज बहुत सुहावनी आठ पहर होती रहती है। उस मुकाम को पाकर के रूह को बहुत सरूर[9] (आनन्द) हासिल होता है और रूह भी बहुत पाक और लतीफ़[10] (सूक्षम) हो जाती है। आलमे रूहानी[11] की खबर उस जगह से पड़नी शुरू होती है। कोई दिन उस जगह की सैर करके फिर ऊपर चढ़ती है।

---

1. धसाओ 2. त्रिकोण 3. चौड़ा 4. लम्बा 5. व्याख्या 6. सूरज 7. चन्द्रमा 8. लज्जित 9. आन्नद 10. सूक्ष्म 11. चैतन्य देश

चढ़ते चढ़ते करोड़ जोजन ऊपर चढ़ कर तीसरा परदा फोड़ कर सुन में पहुंची कि जिस को फुकरा ने आलमे-लाहूत कहा है। उस की तारीफ क्या कहूं, उस मुक़ाम पर रूहें बहुत विलास करती हैं और रोशनी वहां की ऐसी है कि बारह बारह हिस्सा ज़्यादा रोशनी त्रिकुटी से मालूम पड़ती है। तालाबे ज़ुलाली[1] व हौज़े कौसरी[2] पुर-अज़ आबेहयात[3] कि हिन्दी में उस को मानसोवर कहते हैं, जा ब-जा[4] मौजूद हैं और कितने ही गुलशन[5] और चमन[6] खिले हुए नज़र पड़ते हैं और अक्सर रूहें वसूरत नाजनीनां[7] मुक़ामाते मुख्तलिफ़[8] पर रक्स[9] कर रही हैं व ग़िज़ाहाय लतीफ अज़ बस शीरी[10] व खुशनुमा[11] तरोताज़ा तैयार हैं और नग्महा[12] तरानहा[13] हर जानिब[14] को हो रहे हैं। उस आनन्द व सरूर को रूह रसीदा[15] जानती है। कहने में आ नहीं सकता और हर एक जगह झिरने आबेहयात के जारी हैं यानी अमी सरोवर भरे हैं अमृत की धारा चल रही है। रौनक[16] और ज़ेबाइश[17]

---

1. निर्मल, साफ 2. अमृत कुंड 3. अमृत से भरे हुए 4. जगह व जगह 5. फुलवारी 6. बाग 7. खूबसूरत 8 जुदा जुदा 9. नृत्य 10 उमदा खाना और मिठाई 11. सुहावनी 12. राग 13. रागनी 14. तरफ 15. पहुंचीं हुई 16. शोभा 17. सजावट

उस मुकाम की क्या कहूं हीरों के चबूतरे, पन्नों की क्यारियां, जवाहिरात के पौदे, लाल और चुन्नियां जड़े हुए नमूदार[1] हो रहे हैं। मछलियां मुरस्सा[2] उन तालाबों में तैर रही हैं। दम दम पर झलक दिखातो हैं। पल पल पर चमक उनकी दिल को पकड़ती है। आगे उस के अनन्त शीश महल बने हुए हैं और रूहें अपने अपने मुकामों पर मुवाफ़िक हुक्म मालिक अपने के मुकीम[3] हैं और कैफियत और विलास नये-नये परस्पर देखती हैं और दिखाती हैं कि हिन्दी में उन्हों रूहों को हंस मंडल करके ब्यान किया है। नकशबंदी[4] उन मुक़ामों की देखने ही के ताल्लुक़ है। कुल कारख़ाना उस जगह का रूहानी है यानी चैतन्य लतीफ़[5]-कसीफ़[6] और जड़ नहीं है।

और वहां की रूहों में लताफ़त (सूक्ष्मता) और पाकी[7] अज बस[8] है, कसाफ़त[9] और मलीनता जिसमानी यानी बदन की नहीं है, और शरह उस सैरगाह की फ़कीर जानते हैं। ज्यादा खोलना उस का मुनासिब

---

1. दिखाई देते हैं 2. जड़ाऊं 3. ठहरी 4. चित्रकारी और बनावट 5. सूक्षम 6. स्थूल, नापाक 7. निर्मलता 8. बहुत 9. गंदगी

नहीं। मुद्दत कसीर[1] उस जगह रूह इस फकीर की ने सैर की, फिर मुरशिदों की हिदायत से आगे को चली।

चलते चलते पाच अरब पछत्तर करोड़ जोजन ऊंची गई। आलमेहाहूत[2] का नाका तोड़ा। उस आलम की सैर की। उस मुकाम का ब्यान क्या करूं, दस नील तक ज़ुल्मात यानी अंधेरा है। गहराई उस तिमिर खंड की कहां तक वर्णन करू, खरब जोजन तक रूह नीचे उत्तर गई और थाह उसकी हाथ न लगी, फिर उलट कर ऊपर चढ़ आई और जो निशाना कि मुर्शिदों ने बताया था उस की सुध लेकर उसी रास्ते पर चली और अंत लेना उस मुकाम का अनसव (मुनासिव) न समझा। आगे को बढ़ी। यह मैदान महासुन्न का है। इस जगह चार मुकाम निहायत गुप्त हैं और किसी संत ने खोले नहीं। उस जगह रूहें बेशुमार जो कि मरदूद[3] दरबार सच्चे खुदा की हैं, उन के बन्दीखाने बने हुए हैं। अगरचे तकलीफ उन रूहों को उस जगह कुछ नहीं है, अपनी अपनी रोशनी में अपना अपना कारज करती रहती हैं लेकिन दर्शन मालिक का उनको नसीब नहीं होता।

---

1. बहुत ज्यादा 2. महासुन्न 3 निकाली हुई

दर्शन के न मिलने से अलबत्ता बे-कली है। मगर एक सूरत मुआफी की उनके वास्ते भी मुकर्रर रक्खी गई है कि जब जब संत उस रास्ते से गुज़र करते हैं और जो रूहें कि नीचे के लोकों में से संतों के वसीले से जाती हैं जिन जिन रूहों को कि इत्तिफाक उन सन्तों के दर्शनों का हो जावे इन रूहों के ले जाने की जो खुशी कि सन्तों को होती है और उस सच्चे खुदा की निहायत मेहरबनी और अल्ताफ[1] इन रूहों पर होता है, संत उन रूहों को बख्शा कर फिर सच्चे खुदा के पास बुलवा लेते हैं और हाल उस जगह का बहुत से बहुत है, मगर कहां तक कहूं।

उस मुकाम को छोड़ कर आलमे हूतलहूत में पहुंची कि जिस को हिन्दी में भवरगुफा कहते हैं कि वहां एक चक्र कि जिस को हिंडोलना कहते हैं, ऐसा लतीफ फिर रहा है और रूहें उस जगह सदा झूलती रहती हैं और गिर्द उस के अनन्त दीप रूहानी बने हुए हैं। और उन दीपों में से आवाज "सोहं सोहं" व सदाय अनाहू अनाहू" सदा उठ रही है और रूहें और हंस उन्हीं धुनों से हमेशा विलास करते रहते हैं

1. दया

और जो जो सिफत इस मुकाम पर और है वह ज्यों की त्यों लिखने में नहीं आती। देखने ही के ताल्लुक है। जब रूह इस मार्ग को कमाती कमाती पहुंचेगी, तब आप देख लेवेगी, इस वास्ते मुनासिब है कि इस तरीक़ की कमाई करे जाओ। यह शग़ले आवाज़ है। इस को मत छोड़ो। अब यहां की सैर देख कर रूह आगे को चढ़ी।

आकाश मार्ग हो कर यानी ऊंचे को चढ़ती चली जाती है, दूर से सुगंधें मलयागिर की और किस्म किस्म के इतरियात की सी लपटें चली आती हैं और धुनें बांसरियों की अनंत सुनाई देती हैं। उन को सुनती और सूंघती हुई रूह यानी सुरत आगे को चढ़ती चली जाती है। जब इस मैदान के पार पहुंची, नाका सतलोक का हासिल हुआ, कि वहां से आवाज़ "सत सत्त" और "हक हक" बीन के बाजे में से निकलती सुनाई दी कि उस को सुन कर रूह मस्तानावार[1] धसी चली जाती है। और वहां नहरें सुनहरी और रूप हरी पुर-अज़-आवे-ज़ुलाल[2] दीखने लगी और बाग बड़े बड़े नज़र आये। एक एक दरख्त

---

1. मतवाली 2. अमृत से भरी हुई

उस का करोड़ करोड़ जोजन की बुलंदी[1] रखता है और सूरज और चांद करोड़ों बजाय फूल और फलों के लगे हुए हैं और अनेक रूहें और हंस उन दरख्तों पर बजाय जानवरों के चहचहे और विलास कर रहे हैं। अजब लीला उस मुकाम की है कि कहने में नहीं आ सकती। यह लीला देखती हुई रूह यानी सुरत सत्तलोक में दाखिल हुई और सत्तपुरुष का दर्शन पाया।

अब सत्तपुरुष के स्वरुप का वर्णन करता हूं कि एक एक रोम उस का इस कदर मुनव्वर[2] है कि करोड़ों सूरज और चांद शर्मिंदा हैं। जब कि एक रोम की ऐसी सिफत है तो तमाम रोमों की क्या सिफत लिखने में आवे और जिस्म की तारीफ की कहां गुंजाईश, नैन नासिका और श्रवण मुख और हाथ और पांव का क्या वर्णन करू, महज़[3] नूर ही नूर[4] है, नूर का समुद्र कहूं तो नहीं बनता।

एक पदम पालंग घेर सतलोक का है और पालंग की शुमार यह है कि यह त्रिलोकी एक पालंग है। पस दराजी[5] और वसअत[6] सत्तलोक की किस कदर

1. ऊंचाई 2, रोशन 3. बिल्कुल 4. प्रकाश 5 लम्बाई 6. चौड़ाई

बड़ी हुई कि कयास[1] काम नहीं कर सकता, और रूहें पाक कि जिन को हंस कहते हैं, वहां बसती हैं और सतपुरुष का दर्शन करती हैं और नवाय[2] बीना जा ब जा सुन रही हैं व ग़िज़ाय अमी हमेशा खाती रहती हैं।

इस मुकाम का भी विलास देख कर रूह आगे को चली और अलख लोक में पहुंची। अलख पुरुष का दर्शन पाया। एक संख का घेर उस लोक का है और अरब खरब सूरजों का उजाला एक एक रोम में अलख पुरुष के है।

फिर वहां से ऊपर को चली। अगम लोक को पाया जिस का घेर महासंख पालंग का है और करोड़ संख की काया (जिस्म) अगम पुरुष की है और वहां के हंसों के रूप भी अद्‌भुत हैं, और विलास भी वहां के अचरज रूप हैं। इस जगह बहुत मुद्दत विश्राम किया।

इस से आगे राधास्वामी यानी अनामी पुरुष का दीदार किया और उसमें समाई। वह बेइन्तिहा (अपार) और बेशुमार और बेअंत है और फकीरों

---

1. समझ, अनुमान 2. आवाज

का निज स्थान वही है। उसको पा करके सब संत चुप हो गये और मैं भी अब चुप होता हूं।

इतनी बड़ी भारी गति फकीर और संत की है। और जो लोग कि पहले ही मुकाम पर थक गये और उसको बेइन्तिहा और बेअन्त कहने लगे, पस उनके मुरीदों और सेवकों को कैसे इन मुकामात का निश्चय कराया जाय ? सिवाय संत और फकीर कामिल के कोई नहीं जान सकता और यकीन भी इन मुकामों का उन्हीं को होगा कि जिनको संत और फकीर भेदी इन मुकामों के मिले होंगे। उनको इनके बचन पर एतकाद (निश्चय) होगा तो यकीन लावेंगे।

यह मुकाम न पैग़म्बर साहिब पर खुले और न व्यास और वशिष्ठ को मालूम हुए, पस-हिन्दू और मुसलमान कोई इसका यकीन कर नहीं सकता। उनको इस हाल का सुनाना भी ज़रूरी नहीं क्योंकि वह पैग़म्बर और कुरान के पाबन्द हैं और हिन्दु ब्यास वशिष्ठ और वेद के कैदी हैं। इन से यह बचन सुने भी नहीं जावेंगे।

इस से मुनासिब है कि जिस किसी को एतकाद फकीर और संत पर ऐसा है कि इन सबसे आगे संत

पहुंचे हैं। और संतों की महिमा बहुत भारी है और खुदा और परमेश्वर दोनों के पैदा करने वाले संत हैं और इनकी गति को वे दोनों नहीं जान सकते, ऐसा एतकाद संत और फकीर पर जिस किसी का है उस को सुनाना और कहना इस हाल का फायदा करेगा। इस वास्ते हर एक को यह सुनाना न चाहिये जबतक कि एतकाद उस का ऐसा परख न लिया जावे जैसा कि ऊपर मैंने ब्यान किया है।



हिदायतनामा की व्याख्या

यह संसार सत्य है। जो इसे असत्य कहते हैं वह इस ख्याल से कि जब उन का ख्याल ध्यान करने के अभ्यास से इस बाहरी जगत को भूल जाता है तो वह ख्याली मस्ती में आकर संसार और इस के कारोबार को मिथ्या कह देते हैं। उनकी दृष्टि से यह जरूर मिथ्या है मगर ऐसा कह देने से इस संसार का अभाव तो नहीं हो जाता। यद्यपि इन के ख्याल से यह असत्य प्रतीत होता या स्वप्न मालूम पड़ता है मगर वास्तव में यह "दृष्टि सृष्टि" का विषय है। जिनकी दृष्टि वैसी नहीं बनी अर्थात सुरत संसार और उस के कारोबार की ओर लगी हुई है, उनके लिये यह सत्य है। इसे असत्य कहना, अनसमझी और नादानी की बात है।

विचार योग्य :-विषय गम्भीर है। पाठकों को चाहिये कि एकान्त में बैठ कर ध्यान पूर्वक बार २ अध्ययन करें। गूढ़ समस्या को आसानी से समझाने के लिये यह व्याख्या प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गई है।

संत या पूरे फकीर सदा साफ और यथार्थ बात-चीत करते हैं। जब तक शरीर है और जाग्रत अवस्था है, यह संसार सत्य है और इस सत्यता का दूसरा नाम जाग्रत अवस्था, जबरूत अथवा भूलोक आदि है। इस में हम संसार को देखते और उसका कारोबार करते हैं। यद्यपि मानवीय सुरत जाग्रत अवस्था में सब कुछ देखती और संसार का कारोवार करती है लेकिन उसे सांसारिक कारोवार में ठहराओ का पूरा अवसर नहीं मिलता और पग २ पर विकार उत्पन्न होता है। इस लिये वह विकार की अवस्था में दुखी होकर निम्नलिखित प्रकार के प्रश्न उठाने के लिये विवश होती है।

(१) हम कौन हैं ? (२) यह संसार क्या है ? (३) कैसे बना (४) किस कारण बना (५) इस को बनाने वाला कौन है ? आदि २। ऐसे व्यक्ति को जिज्ञासु कहते हैं।

कई लोग जाग्रत अवस्था में अपनी आवश्यकताओं के पूरा न होने के कारण दुखी होकर किसी ऐसे व्यक्ति का सहारा ढूंडते हैं जो इनकी आवश्यकताओं पूरा करे या पूरा होने में सहायता दे। यद्यपि कई बार वह अपने पराक्रम से काम लेते हैं फिर

भी विवशता वश दूसरे के अधीन होना ही पड़ता है। ऐसे आदमी कर्मी या भक्त कहलाते हैं।

कोई बाहरी प्रभावों से प्रभावित हुआ २ इन्सान लोगों की प्रतिकूल स्थितियां और बढ़ती हुई व्याकुलताओं को देख कर उन्हें दया भाव वश इन कष्टों से छुटकारा दलाने में लग जाते हैं। ऐसे इन्सान महापुरुष कहलाते हैं।

मज़हब का प्रारम्भ तीसरी श्रेणी के लोगों से हुआ। उन्होंने समय की आवश्यकताओं को दृष्टिगोचर रखते और वर्तमान समय के कष्ट क्लेशों का अनुमान लगाते हुए सोचा, समझा और ऐसे सुझाव पेश किये जिन पर आचरण करने से वह कष्ट दूर हो सकें। हज़रत मुहम्मद, गौतम बुद्ध, श्री कृष्ण जी महाराज, स्वामी दयानन्द जी सरस्वती व अन्य सब बज़ुर्ग हस्तियां इसी ख्याल को लेकर उठीं।

अठारह सौ सत्तावन के गदर का अभी अन्त हुआ था कि स्वामी जी महाराज (सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल) का ज़हूर हुआ। उस समय की परिस्थितियों का चित्र आपके मन पर खिच गया। आप क्योंकि महापुरुष थे, सोचा कि इस ग़दर या फतूर में बहुत

हद तक मज़हब का भी हाथ है और मज़हब के नाम पर प्रायः खून की नदियां बहती और घोर अत्याचार होते रहते हैं इसलिए उनकी सुरत सुधार करने की ओर प्रेरित हुई और यह हिदायतनामा आपके उस अनुभव का परिणाम है। जैसा कि आप फरमाते हैं कि जिन को सच्चे खुदा की तलाश हो और तहकीकात (खोज) मज़हब की मंज़ूर हो वह सोहबत (संगत) फकीरों की करें। उन्होंने ऐसी हिदायत क्यों की ? इसलिए कि इन्सान को खुदा की ग़लत समझ से छुटकारा मिले और उसे शान्ति प्राप्त हो। वह समय ही ऐसा था जबकि मज़हब का ख्याल देश में ज़ोरों पर था। हिन्दु और मुसलमानों में हज़ारों सम्प्रदाय प्रचलित थे। अब इतना ज़ोर नहीं और जो है वह भी नाम मात्र या दिखावे का। अब देश का ख्याल किसी और तरफ जा रहा है। यह बात कुछ इन्सान की प्रकृति में समाई हुई है कि वह जिस ख्याल को लेता है उस में एक प्रकार की टेक रख लेता है और जब तक उस का ख्याल तजरबा के बाद कमज़ोर न हो जाये वह उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। इसलिए सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल ने भी उसी टेक

का, जो कि लोग उस समय रखते थे, का सहारा लिया और सच्चाई या सत्य के रहस्य को मालिके कुल का नाम दिया। यद्यपि मज़हब की आड़ ली गई मगर केवल सच्चाई को व्यक्त करने और लोगों की अधिकतर संख्या की भलाई की खातिर।

जोग ज्ञान मत इन्हों भाखा, पुनि सन्तन मत ऊंचा राखा।
(सतपुरुष राधास्वामी दयाल)

क्योंकि हिन्दुओं के दिलों में अवतार पूजा और खुदा की पूजा का ख्याल प्रबल था इसलिए हकीकत या सच्चाई को मालिके कुल या सब से बड़ा खुदा आदि नामों से प्रकट किया ताकि उस ख्याल वाले लोग अपने ही ख्याल के सहारे इधर प्रेरित हों और सहारे के इच्छुक स्वभाविक ही सहारा चाहते हो हैं। इसलिए उस पवित्र पुनीत विभूति ने हिदायत की कि अगर तुम सच्चे खुदा या सच्चे मालिके कुल के दर्शन करना चाहते हो तो फकीरों की संगत करो और उस फकीर या संत के देर तक दर्शन करते रहो, "आंख से आंख न झपके"। यह क्यों ? इसलिये कि मानवीय मन जो हर समय कई प्रकार के विचारों की उलझन में फंसा रहता है, एकाग्र होने लगे। क्योंकि फकीर या

संत आप एकाग्रता में रहता है, उस की संगत के प्रभाव से जिज्ञासु अथवा भक्त में भी वही अवस्था पैदा हो जाये। वास्तव में बिना एकाग्रता के इन्सान में न विवेक ही पैदा होता है और न वो सार बात को समझने के काबुल होता है।

प्र०- पहले यह बताईये कि फकीर या संत किसे कहते हैं ?

उ०- जिस के अन्तर से वैर, विरोध ईर्ष्या द्वेष और द्वैत के प्रबल भाव और ख्याल न निकलते हों वो फकीर या सन्त है। वास्तव में यह हमारी सुरत या जीवन की उस अवस्था का नाम है जो एकाग्रता की अवस्था में रहती है मगर यह एकाग्रता बिना एकाग्रता के यत्न के बनी रहती है। ऐसी पवित्र हस्ती ही, जो किसी को बुरा नहीं समझती, न किसी के विरुद्ध बुरा ख्याल ही रखती है, सन्त या फकीर कहलाने की अधिकारी है। अन्य शब्दों में वो एक शान्तमय समुद्र के समान है जो साधारण या स्वभाविक और सहज जीवन में रहता है।

प्र०- हर रोज़ देखने में आता है कि फकीरों के डेरों में गुट बन्दी, एक दूसरे गिरोह को बुरा भला

कहना और लड़ाई झगड़े जारी रहते हैं। मेरे विचार में कोई भी सत्संग घर अथवा शिक्षा केन्दर, अवगुणों से बरी न होगा।

उ०- जब तक इन्सान उस दर्जा को नहीं पहुंचता जिसे फकीरों के मज़हब में संत या फकीर कहा गया है, वो इन बुराइयों से बरी नहीं हो सकता। इसलिये हमें चाहिये कि अवगुणों को दृष्टि गोचर न रखते हुए अपना काम बनायें। हिदायत-नामा में यह हुक्म है कि फकीर या संत की तलाश करनी चाहिये।

सतगुरु खोजो री प्यारी जग में दुर्लभ रत्न यही।
(राधास्वामी दयाल)

दुनियां तलाश किये बिना केवल सुनी सुनाई बातों पर विश्वास करके गुरु धारण करती है जिस का परिणाम यह होता है कि जीवन सफल नहीं होता। अगर ऐसे फकीर न मिलें तो हुक्म है कि उन फकीरों की संगत की जाये जो इस अवस्था को प्राप्त करने के यत्न में लगे हुए हैं। मालिके कुल या सत्य स्वरुप से मिला हुआ केवल वही व्यक्ति है, जो प्राणी मात्र को अपने जैसा समझता है और जिस के मन में घृणा द्वेष और अन्य बुरी भावनायें नहीं उठती।

प्र०- राधास्वामी दयाल और कबीर साहिब ने आप दूसरे धर्मों का खण्डन किया। क्या वो फकीर नहीं थे।

उ०- भाव को ध्यान पूर्वक समझने का प्रश्न है। पिता अपने पुत्र को समझाने के लिये अगर किसी विशेष ढंग से हिदायत करता है तो इस का अर्थ खण्डन नहीं। तुम देखो ! संतों या फकीरों के दरबार में मेरे जैसे बुरे से बुरे, मलीन, कामी, चोर, डाकू सब ही जाते हैं और वे उन से प्रेम करते हैं। इतिहास का अध्यन करो तो पता लगेगा कि साधारणतया ऐसे ही आदमी दया के पात्र हुए, आज कल किसी बुरे आदमी को कोई सज्जन पुरुष अपने पास नहीं फटकने देता और घृणा करता है। इस के विपरीत फकीर या संत सब से प्रेम करते हैं।

प्र०- दया दृष्टि से क्या अभिप्राय है ?

उ०- दया कहते हैं, सहानुभूति को, प्रेम या प्यार को। संत, फकीर पूर्ण पुरुष या शान्त पुरुष जीव को दुखी देख और उस के भाव का अनुमान लगा कर दया भाव से और निःस्वार्थ ढंग से यह

चाहता है कि उस का दुख दूर हो जाये । वो दुखी जीव की प्रकृति के अनुसार उपाय बता कर उसे दयापूर्वक राह पर लगाना चाहता है। उस समय उस पवित्र विभूति के ख्यालात की धार आंख में होती है। इसी का नाम दया दृष्टि है।

प्र०- तो आप के ख्याल में दया दृष्टि के यह अर्थ नहीं जो आम सत्संगी समझते हैं कि गुरु ने दृष्टि डाली और इन्सान का काम बन गया ?

उ०- इन्सान बाणी जाल में बुरी तरह फंसा हुआ है और मन इतना चंचल है कि सार बात को समझने के योग्य नहीं, इसलिये संतो फकीरों और महात्माओं ने भेद भाव से काम लेकर सब से पहले बलपूर्वक यह आवाज़ दी कि करनी करो, करनी के अर्थ एकाग्रता प्राप्त करने के हैं चाहे वो किसी ढंग से की जाये, कर्म से, भक्ति से या योग से मगर एकाग्रता का होना बहुत आवश्यक है। इसी लिये प्रारम्भिक श्रेणियों में गुरु पूजा, गुरु की सेवा और गुरु का प्रेम मुख्य रखा है ताकि किसी प्रकार एकाग्रता प्राप्त हो

और इन्सान सार बात समझने के योग्य हो सके। वास्तव में प्रेम ही एक ऐसी चीज़ है जो आसानी से अन्तर मुखी होने में सहायक होता है और प्रेम के जज़्बा को उभारने के लिये विश्वास का होना जरूरी है। विश्वास कई ढंगो से कराया जा सकता है। इसका कहां तक विस्तार करूं। इसलिये पूर्ण गुरु का प्रेम इन्सान को सत्य के रहस्य से जल्दी ही जानकार करा देता है। इस के विपरीत दूसरों को देर लगती है। हां, जो स्वभाविक ही समाहित चित होते हैं उन को समझाने में कोई देर नहीं लगती। दुनियां राधास्वामी मत पर हंसी उड़ाती है। और तो और आप पन्थाई जिन्हें सत्य का रहस्य नहीं मिला, कह देते हैं कि फकीरों का मत सब्ज़ बाग़ दिखाता है। पढ़ने वालो ! सुनो ! दया दृष्टि और कुछ नहीं केवल (जैसा कि मैंने ऊपर वर्णन किया) दयायुक्त भावना है, जो प्रेम और दया की धार को लेकर आखों से निकालता है और जब वो दृष्टि सत्य के जिज्ञासु पर पड़ती है, जिसे शान्ति या सुख की

सच्ची तलाश होती है तो उस के मन पर प्रभाव डालती हुई खुशी, आनन्द और साहस देती है और वो उन बचनों को पड़ कर जो पूर्ण गुरु के श्री मुख से निकलते हैं, दिल में रख लेता है और उन पर विचार करता हुआ उनका क्रियात्मिक रूप बन जाता है, इसी का नाम दया दृष्टि है। जितना प्रेम या तड़प, शान्ति, सुख और आनन्द लेने की होगी उसी के अनुसार उस दृष्टि का प्रभाव होगा। मां कैसे प्रेम से बालक को देखती है। यद्यपि बालक अयोग्य है, तो वो उस दृष्टि की परवाह न करने के कारण कोरा रहता है। मगर जो बालक आज्ञाकारी और मान करने वाला है उस पर वो दृष्टि विषेश प्रभाव रखती है।

प्र०- आम सत्संगियों को अपने गुरुओं के पास जाते हुए बहुत समय गुज़र गया मगर उन्हें अभी तक वो वस्तु नहीं मिली, जो आप के विचार के अनुसार संत या फकीर देते हैं। उन से पिछले गुरु या वर्तमान गुरु भिन २ काम लेते हैं। किसी को कुछ बताया जाता है और किसी को कुछ ऐसा क्यों है ?

उ०- आहा ! सत्गुरु के पास लोग क्या लेने जाते हैं ? यह उन का हृदय ही जानता है। कोई किसी कष्ट में ग्रस्त है, कोई किसी कामना में बन्धा हुआ है, उन्हें वो गुरु जिन्हें चेला बनाने की धुन है, ऊटपटांग बातें कह कर धोका देते हैं। मगर जो गुरु सत्य के रहस्य से जानकार होते हैं वो ऐसा उपाय बताते हैं जिस को अपनाने से इन्सान की इच्छा या तो पूरी हो जाती है या भोग भोगने के बाद या तजरबे के बाद उस से छुटकारा मिल जाता है। क्योंकि जब तक इन्सान इच्छाओं के वश में रहता है उसे कभी भी सत्य का रहस्य अथवा शान्ति भाग्य में नहीं आती। इसीलिए हिदायतनामा में साफ लिखा है कि पहले ज़र, ज़न और ज़मीन (धन, स्त्री और सम्पति) की चाह को मौज के हवाले करके सन्तों या फकीरों के पास आओ ताकि समस्या जल्दी हल हो जाये। जो ऐसा नहीं करते, उन्हें देर लगती है। इस लिए पूर्ण गुरु जो हुक्म दे या साधन बतलाये, वह प्रयाप्त है। उस पर आचरण करने से

इन्सान को आप अनुभव हो जायेगा। मेरी समझ में गुरु आज्ञा ही मुख्य चीज़ है।

प्र०- मगर ऐसे गुरु बहुत थोड़े मिलते हैं जो स्वार्थ रहित हों।

उ०- "जवेन्दा याबिन्दा" अर्थात ढूंडने वाले को मिल जाता है। अगर तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता हो, तो निश्चित मिलेगी। मगर लोगों ने यह समझ रखा है कि गुरु बाल बच्चे देंगे, दौलत देंगे, मान देंगे ! अरे, भोले भाले लोगो ! राधास्वामीमत या सन्तमत को समझो। राधास्वामी सार वचन में साफ लिखा है :-

गुरु चेला व्यौहार जगत में।
झूठा वर्त रहा ॥१॥
कासे कहूं खोज नहि काहू।
धोखे धार बहा ॥२॥
गुरु तो लोभ प्रतिष्ठा चाहत।
शिष स्वारथ संग आन बंधा ॥३॥
सच्चा मारग सुरत शब्द का।
सो अब गुप्त भया ॥४॥
गुरु चेला पाखंडी कपटी।
चौरासी में दोऊ गया ॥५॥

शब्द स्वरूपी शब्द अभ्यासी।
अस गुरु मिले तो पार हुआ ॥६॥
सुरतवन्त अनुरागी सच्चा।
ऐसा चेला नाम कहा ।७॥
गुरु भी दुर्लभ चेला दुर्लभ।
कहीं मौज से मेल मिला ॥८॥
शब्द सुरत बिन जो गुरु होई।
ता को छोड़ो पाप कटा ॥९॥
राधास्वामी यों कह गाई।
बझ बचन तब काज सरा ॥१०॥

सुनो ! इसके अतिरिक्त कबीर साहिब क्या फरमाते हैं।

ऐसी दिवानी दुनियां, भक्ति भाव नहिं बूझै जी ॥१॥
कोई आवै तो बेटा मांगे, यहो गुसांई दीजै जी ॥२॥
कोई आवै दुख का मारा, हम पर कृपा कीजै जी ।३।
कोई आवै तो दौलत मांगे, भेंट रुपैया लीजै जी ॥४॥
कोई करावे ब्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी ।५॥
सांचे का कोई ग्राहक नाहीं, झूठे जगत पतीजै जी ।६॥
कहें कबीर सुनो भाई साधो, अन्धों को क्या कीजै जी ।७।

मेरे हां कोई पुत्र नहीं था, मेरे पिता जी व अन्य महानुभावों ने दयाल जी को लिखा कि फकीर

के घर लड़का हो। दयाल जी ने उत्तर दिया कि अगर सन्तान चाहते हो तो फकीर को बुलाओ वो सन्तान देगा, क्या कमाल का जबाब था। संत फकीर या पूर्ण गुरु इन्सान के दुखों का सदा के लिये अन्त कर देता है। किस तरह ? केवल सार भेद समझा कर और बस"

प्र०- आप की बातचीत से पता लगा कि फकीर या सन्त की दया दृष्टि का प्रभाव केवल इतना ही है कि इनकी दयायुक्त भावनाओं के प्रभाव इन्सान पर पड़ते हैं और वो उन से लाभ उठाते हैं।

उ०- हां।

प्र०- आप के सम्पर्क में आये हुए कुछ सतसंगी भाईयों से सुना गया है कि आपने अपने ख्याल से कोई फल या अन्य वस्तु सत्संगीजनों को दे दी और उसे काम में लाने से उनके हां सन्तान हो गई या बीमारी की अवस्था में वे स्वस्थ हो गये। या तो यह घटनायें, जो ब्यान की गई हैं, ग़लत हैं, अगर नहीं, तो मानना पड़ेगा कि संत या फकीर अपनी ख्याली धार से

अन्तर की अवस्था को भी बदल सकते हैं।

उ०- देखो ! मैंने अपना जीवन सत्य के साक्षातकार की धुन के साथ आरम्भ किया था और उस को चरम सीमा तक पहुंचा दिया। क्योंकि उद्देश्य शुभ और निःस्वार्थ था, इसलिये पूर्ण रूप में सफलता प्राप्त हुई। ऋद्धियों सिद्धियों, चमत्कारों या विलक्षण घटनाओं की ओर कभी ध्यान नहीं दिया मगर आचार्य-पदवी कोग्रहण करने पर जब देखा कि सत्संगी भाईयों की आम लग्न ऋद्धियों सिद्धियों और चमत्कारों की ओर लगी हुई है और उनका स्वभाव अद्भुत बातों में ग्रस्त है तो समय के अनुकूल समझो या अनुभव के आधार पर मैंने भी कुछ आदमियों को सहानुभूती की भावना का यन्त्र बनाया। इसी के फलस्वरुप बिमारों की सेहत और सन्तानहीनों को सन्तान आदि मिल गई, जिससे सिद्ध हुआ कि विचार शक्ति एक महान शक्ति है मगर यह विचार शक्ति केवल उस पर प्रभावित होती है, जिसको उस इच्छित वस्तु के प्राप्त करने की सच्ची और प्रबल चाह होती है,

और पर नहीं। इसलिये कई आदमियों पर ख्याल प्रभाव रहित भी सिद्ध हुआ। क्योंकि ख्याल देने के विशेष २ नियम हैं और वे भी हर समय नहीं दिये जा सकते, इसलिये मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि आदमी की भलाई इसी में है कि वो किसी क्रियात्मिक व्यक्ति का सत्संग करे और उससे प्रेम करे। उस आदमी के प्रेम और विश्वास का ख्याल और सत्संग कराने वाले का क्रियात्मिक जीवन दोनों मिलकर सत्संगी की अवस्था में परिवर्तन कर देगें। अभिप्राय यह है कि सच्चे संत या फकीर की सहानुभूति प्राप्त हो।

प्र०- कई सत्संगी ऐसे भी हैं जो संतों के मठों में हर समय उनके साथ रहते हैं लेकिन उन पर सहानुभूति का जज़्बा कोई प्रभाव नहीं रखता बल्कि उनमें बहुत लोगों के जीवन इस हद तक खराब सुनने में आये हैं कि जिन का वर्णन करना उचित ज्ञात नहीं होता यद्यपि वे अपने अपने गुरुओं की दृष्टि के पात्र भी होते हैं।

उ०- इस के दो कारण हैं पहला तो यह कि उन के पास अधिक गिनती ऐसी इच्छाओं वाले लोगों की रहती है, जो स्वार्थवश किसी सांसारिक कामना को पूरा करने के लिये दरबार के दायरा की शोभा बने रहते हैं। क्योंकि उनमें परमार्थी अंग नहीं होता, इसलिये कोरे रहते हैं। दूसरा कारण यह है कि सत्संग कराने वाले बज़ुर्ग उच्च और पूर्ण रूप में निःस्वार्थ नहीं होते, उन्हें सांसारिक उद्देश्य में सफलता के लिये ऐसे आदमियों की आवश्यकता रहती है। फिर लाभ हो तो कैसे। सच्चे संत या फकीर का स्वरूप निःस्वार्थ और लापरवाह होता है और वही इस काम को पूरा कर सकता है, दूसरे लोग केवल स्वांग बनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

पढ़ने वालो, प्रश्न व उत्तर के सिलसिले में मैंने बता दिया कि संत या फकीर कौन है और वो कैसे सच्चाई या सत्य के रहस्य का पता देता है। जिसको प्राप्त या जान लेने से इन्सान इस संसार के सुख और दुख की प्रतिकूल अवस्थाओं से ऊपर आ जाता है और शान्ति को प्राप्त कर लेता है इसलिये तुम उन

ही की संगत करो, हुक्म मानो, सत्संग करो और सफलता अवश्य मिलेगी। उनका कोई भी हुक्म स्वार्थ के लिये न होगा, वल्कि तुम्हारे ही अनुभव को बढ़ाने और कल्याण के लिए होगा। अब अन्तर के अभ्यास की ओर चलो।

इन्सान को खुदा या ईश्वर की पूजा के परम्परा से मिले हुये विचारों के प्रभावाधीन मालिक की तलाश है, वर्तमान युग के विचारों के अनुसार शान्ति और सुख की तलाश, राष्ट्रीय और राजनीतिक विचारधारा वालों के नियम के अनुसार स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। भूखों को रोटी की आवश्यकता है। पीड़ित या सताये गये लोगों को न्याय की इच्छा है। मैं रोटी की इच्छा, स्वतन्त्रता और न्याय की इच्छा, खुदा या शान्ति की चाह को ही हकीकत समझता हूं और वह केवल सुरत शब्द या अनहद बाणी के साधन द्वारा प्राप्त होगी, जिस की शिक्षा कि राधास्वामीमत देता है।

इस से पहले कि मैं अन्तर की सोपानों की व्याख्या करुं, पढ़ने वालों को यह विश्वाश दिलाना चाहता हूं कि जो कुछ मैं लिखूंगा मेरा निज

अनुभव होगा। जिससे कि मुझे तसल्ली हुई और शान्ति मिली। मैं किसी बात का दावा या (Challenge) झगड़े की बात नहीं करता। अगर किसी भाई को मेरे लिखने के साथ सहमति न हो और उसका अनुभव इससे अधिक और स्पष्ट हो, तो वह मुझे हिदायत कर सकता है।

फकीरों या सन्तों की अध्यात्मिक सोपानें विस्तार के साथ नीचे लिखी जाती हैं :—

१. शिव नेत्र या तीसरा तिल
२. सहसदल कंवल
३. त्रिकुटी
४. सुन्न
५. महासुन्न
६. भंवर गुफा
७. सत्तलोक
८. अलख लोक
९. अगम लोक
१०. अनामी लोक
११. राधास्वामीपद।

शिव नेत्र से लेकर महासुन्न तक का अनुभव

केवल उन व्यक्तियों को हो सकता है जो अपने अज्ञान में द्वैत अंग या दोपने का भाव ले कर और प्रेम या इश्क में लीन होकर अध्यात्मिक सोपानों का अनुभव प्राप्त करते हैं। जिन्हें यह ज्ञान हो जाता है कि यह केवल इन्सान के अपने ही विचार का परिणाम है उन्हें उन चेतनाओं का आनन्द, जो इन सोपानों के विषय में कहे गये हैं या स्थापित किये गये है, प्राप्त नहीं हो सकता और जो ज्ञान, विचार या बुद्धि के अंग में अपने आपको सब कुछ समझ लेते हैं वह थोड़े समय के लिये एक ख्याली खुशी और आनन्द की लहर में बहते रहते हैं मगर समय २ पर वाह्य जगत के प्रभाव उन्हें झकोले देते रहते हैं। अगर वह सत्यप्रिय होंगे तो आगे चलेंगे अर्थात असली सुख की ओर ध्यान देंगे और असली सुख उन्हें उस भक्ति से प्राप्त होगा, जिसकी तालीम राधास्वामी मत देता है और वह यह कि अपने आप को या अपनी सुरत को अपने ही अन्तर लय करना।

सहसदल कंवल का वर्णन :

जब मानवीय सुरत किसी वस्तु की इच्छा या उसे तलाश करती हुई अपने अन्तर में ठहर कर

सोचने लगती है, तो अपने उद्देश्य के प्राप्त करने के सिलसिला में उस एक खाहिश या विचार से कई प्रकार के विचार और उपाय फूटने लगते हैं और ख्याली हिलोर पैदा हो जाती है, इस साधन को उपमा के रूप में प्रकट करते हुए बताया गया है कि ज्योति निरंजन या सहसदल कंवल की एक एक पंखड़ी से हज़ारों पंखड़ियां निकलती हैं। अभिप्राय यह है कि एक ख्याल से हजारों प्रकार के विचार उठ 2 कर अपनी रचना करने लगते हैं। यह सहस-दल कंवल वास्तव में तुम्हारा अपना मन है। इस से अनेक प्रकार की विचारों की लहरें उठा करती हैं और उनके सिलसिला में तुम नये-नये उपाय, आविष्कार, विज्ञान, विद्यायें, हुनर आदि कल्पित रूप से पैदा करके दुनियां के सामने रखते हो। सुनो ! जिस प्रकार तुम्हारा मन या हृदय तुम्हारी अपनी दुनियां बनाता है, इसी प्रकार उस दुनियां के अन्तर जो मन है, उस में भी सदा कल्पित हिलोर का सिलसिला जारी रहता है और रचना के कारोबार करता है। जिस प्रकार तुम्हारा मन अनेक रूप, तरंगें या विचार पैदा करके अपनी रचना करता रहता है, इसी प्रकार

बाहर के सहसदल कंवल से भी धारें फूट-फूट कर इस जगत को बनाती और बगाड़ती रहती हैं। जो अवस्था तुम्हारे अन्तर में है, वही बाहर है। अपने अन्तर का ज्ञान प्राप्त करने में लय होकर जब इन्सान बाहर की दुनियां के विषय में अनुभव करता है, तो उसे अपने ख्याल में अन्तर की चेतनता से इस संसार के खेल का अनुभव होने लगता है। जब तक वो अपनी कल्पित गति में रहता है, खुशी और आनन्द का ज्ञान रखता रहता है और उसी को सब कुछ समझता है। मगर जब अनुभव हो जाता है, तो विवश होकर मन के रूप को देखना चाहता है और सुरत बजाय इसके कि इन विचारों या धारों के साथ बहकर बाहर को जाय, ठहरने लगती है। सुरत के इस ठहराओ में विचारों या धारों की गति बन्द हो जाती है, क्योंकि वो धारें सूक्षम पदार्थ की ही होती हैं वो पांच तत्वों की सूक्षम अवस्था (मन) है, इसी लिये रंग और रूप रखती है और अनेक प्रकार के रंग दृष्टिगोचर होते हैं, जिस का नाम पचरंगी फुलवारी रखा गया है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक बनावट पांच तत्वों से ही बनी हुई है, फिर भी तत्वों

की मात्रा और शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में अलग २ या अधिकता और न्यूनता के साथ होती है। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर के दृश्य भिन्न २ होते हैं। जैसे-जैसे तत्व विशेष समय पर उस के अन्तर अपना काम करते हैं, वैसे २ दृश्य उसे नज़र आते हैं। उदाहरण के रूप में किसी समय शारीरिक प्रकृति में गर्मी होती है, किसी समय कफ़ या वायु काज़ोर होता है और इसी प्रकृति के अनुसार उस समय दृश्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

प्र०- क्या यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति के अभ्यास की दशा या अनुभव सदा भिन्न-भिन्न होते हैं।

उ०- हां, यही कारण है। किसी की प्रकृति कैसी होती है किसी की कैसी। यह प्रकृति समय २ पर बदलती रहती है। मगर एकाग्रता के बढ़ जाने पर जो किसी व्यक्ति ने अपनी कल्पना से एक इष्ट बना कर प्राप्त की हो, मन की धारें इकट्ठी हो जाती हैं और उनके अन्तर से एक प्रकार की रोशनी पैदा होती है, जो ज्योति के रंग से मिलती जुलती है।

प्र०- ज्योति के रंग की सी क्यों होती है ?

उ०- एकाग्रता की अवस्था आने पर मानवीय मन में सभी सूक्ष्म तत्वों की धारें इकट्ठी हो जाती हैं और वे प्रेम के जज़्बा की आग से रोशन होकर उसी तरह ही रोशन हो जाती हैं, जिस तरह से सरसों के तेल या घी से जलने वाले दिए की रोशनी का रंग वास्तव में तेल या घी जो दिये में जलता है, पांच तत्वों के सूक्ष्म अंगों का जोड़ होता है। इसलिये इन दोनों में समानता है।

प्र०- ठीक है मगर यह दृश्य तो हमारे में होता है। हम उस बाहर के सहसदल कंवल, ज्योतिस्वरुप या काल निरंजन का दर्शन कैसे कर सकते हैं?

उ०- हम अपने ख्याल, अनुभव या सुरत से अन्तर में लय हो जाते हैं. तो वो हालत, जो पैदा हुई थी, बड़ी मालूम होती है। क्योंकि सुरत के अन्तर ख़्याल पहले ही से विध्यमान है और जो वस्तु हमारे अन्तर है, वही बाहर है। इसलिये ख्याल में बाहरी हालत का अनुभव होने लगता है।

प्र०- साफ करके समझाइये।

उ०- तुम ने एक सरोवर के थोड़े से पानी की

रसायनिक रीति से जांच की। पता लगा कि इस में इतनी रेत है, कि फलां-फलां वस्तुऐं हैं। जब तुम अपने ध्यान में सरोवर के सारे पानी की वैसे ही जांच करनी चाहोगे तो तुम्हें मालूम हो जायेगा कि उसमें किस मात्रा में रेत है और किस २ मात्रा में अन्य वस्तुऐं हैं, उस समय यह दृश्य एक विशाल रूप धारण कर लेगा, जिसे बाहरमुखी इन्सान तो केवल ख्याल ही कहेगा।

प्र० करता- मैं समझ गया।

उ० दाता- इसी प्रकार सहंसदल कंवल का दृश्य है। जिस प्रकार तुमने अपने अन्तर में ज्योति-स्वरुप मन से और धारें देखीं और उन धारों से और अनेक धारों के निकलते हुए दृश्य को देखा, उसी तरह बाहरी सहंसदल कंवल का दृश्य अपने अनुभव की दृष्टि से अपने अन्तर में नज़र आता है। केवल सुरत या ख्याल के घनें होने की आवश्य-कता है, जितना ध्यान गहरा और एका-ग्रता अधिक होगी, उतना ही आनन्द आये गा, कई बार यह दृश्य सतसंग में ही नज़र

आ जाता है, जब कि बाहरी गुरु अपने बचनों से उस हालत को वर्णन करता है, सुनने वाला पूरे ध्यान से उस तरफ लय होता है।

अन्तर के अभ्यास के समय यह जरूरी है कि इन्सान कोई इष्ट कायम करे। क्योंकि आदर्श से प्रेम किये बिना यह सोपानें आदि कभी भी नज़र न आयेंगी। वास्तव में यह अवस्था इष्ट पैदा नहीं करेगा बल्कि इष्ट का प्रेम पैदा करेगा। जो लोग गुरु धारण करते या कोई पूज्य देव बनाते हैं, वे इच्छा रखते हैं कि पूज्य देव उन्हें इच्छित वस्तु देगा, यह सरासर भूल और यूंही कल्पित है। इच्छित वस्तु सदा इष्ट के प्रेम से मिलेगी. यही कारण है कि राधास्वामीमत के अनुयायी गुरु से प्रेम करते हैं। समझो ! पढ़ने वालो समझो कि मैं क्या कह रहा हूं। इच्छित वस्तु का मिलना, तुम्हारी अवस्था को बदलना, गुरु प्रेम अथवा इष्ट के प्रेम पर आधारित है।

प्रेम के अर्थ ग़लत न समझ लिये जायें। प्रेम का असली अर्थ इच्छा या कामना है। जब इच्छा गहरी हो जाती है तो उसी को प्रेम या इश्क कहते हैं। कमज़ोर मन वाले बाणी से प्रकट कर देते हैं

मगर वलवान मन वाले वश में रखते हैं। यह उन दोनों में अन्तर है।

प्र०- खूब समझा मगर यह शब्द जो इस स्थान पर सुनाई देता है क्या चीज़ है ?

उ०- नियम यह है कि जहां गति है, वहां ही शब्द और रोशनी है। तुम्हारा मन इष्ट बनाकर अपने अन्तर सिमटा और (जैसा कि मैंने उपर ब्यान किया) रोशनी पैदा हो गई या यूंह समझो क्या कि तुम्हारा इष्ट आप रोशन हो गया। रोशनी थी ? पांच सूक्षम तत्वों का मेल, ख्याल की एकाग्रता अथवा मन की यकसूई। एकाग्रता की अवस्था में सूक्ष्म तत्व इकट्ठे हो कर एक दायरा बनाकर हरकत करते हैं और हरकत के कारण जो शब्द होता है, उसकी आवाज़ जरस या घण्टा के समान होती है। यद्यपि मामूली एकाग्रता के होने से भी आवाज़ें सुनाई देती हैं, फिर भी वह आवाज़ें और प्रकार की होती हैं। जैसे चिड़ियों की चूं चूं आदि। जो व्यक्ति इस स्थान की अवस्था का पूर्ण अनुभव करना चाहता है, उसे अभ्यास से पहले अपने मन को तमाम सांसारिक

इच्छाओं से हटाकर पवित्र कर लेना चाहिये। देह के विधान में इच्छा का होना आवश्यक है क्योंकि जिस व्यक्ति की देह में वैद्यक नियमों के अनुसार वायु, कफ, पित्त आदि उचित भाग में न होंगे उसे अभ्यास में पूर्ण दृष्य नज़र न आयेगा।

प्र०- यह कठिन काम है।

उ०- यही कारण है कि सत्संगी भाइयों को जल्दी पूर्ण दृष्य नज़र नहीं आते।

प्र०- इस का इलाज ?

उ०- शारीरिक स्वस्थ्य का सदा ख्याल रखो। वीर्य की रक्षा अति आवश्यक है, पाचनशक्ति ठीक रहे और ऐसे ढंग से जीवन व्यतीत करो कि जिस में वायु, कफ, पित्त में समानता रहे। खाना भूख से कम खाओ। जीवन समता में रहे। इसलिए हमारे पूर्वजों ने प्रातः ब्रह्म महूर्त में उठना, नित्य कर्मों से निवृत होकर, नहाना धोना और अन्य नियम बनाये ताकि स्वस्थ्य ठीक रहे। जिस की सेह्रत खराब होती है क्यों-कि उसके मन में दुखदायी चिन्तायें अधिक उठा

करतो हैं, इसलिए वह अभ्यास कैसे कर सकता है। और अगर करेगा भी, तो एक दिखावे के रूप में जिससे कोई अर्थ प्राप्त न होगा। वस्त्र सादा व साफ और भोजन शीघ्र पचने वाला हो अधिक पकवान न खाये जायें। हृदय कष्ट उठाने से मुक्त रहे। फिर शरोर और मन ठीक रहेंगे और एकाग्रता प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। प्रेम और इच्छा को लेकर अभ्यास में वैठने से जल्दी ही दृश्य देख सकोगे। इन दृश्यों का आनन्द प्राप्त करने के बाद अब ऊपर को चलो।

प्र०- जब मन की एकाग्रता प्राप्त हो गई तो आगे जाने की अभी कुछ कमी शेष रही ?

उ०- हां, क्योंकि यह अन्तिम ध्येय नहीं है लेकिन अगर कोई व्यक्ति आगे जाना न चाहे, तो न जाये। क्योंकि यह मन या सहसदल कंवल आप सूक्ष्म तत्व से बना है इसलिए यह एक हालत में सदा न रह सकेगा, इस में अधिकता न्यूनता होती रहेगी। तुम अपने निज अनुभव के आधार पर बात करो ! ज़रूरी है कि समय आने पर इन

सूक्ष्म तत्वों में न्यूनता अधिकता होगी और तुम्हारी एकाग्रता टूटेगी। इसलिए सन्तों ने अनुभव के बाद इस मण्डल को अन्तिम स्थान नहीं ठहराया बल्कि इसे काल का नाम दिया। तुम अब आप अपने दिल में सोचो और जो बात पूछने वाली समझो, पूछो।

प्र०- हां, बात तो ऐसी ही ज्ञात होती है! फिर क्या करना चाहिये।

उ०- अब तुमने समझ लिया कि इस स्थान पर पहुंचने के लिए इन्सान पहले इष्ट बनाता है, फिर मानवीय सुरत मन की हज़ारों तरंगों या लहरों में खूब खेलती है। उस खेल से उपरामता आ जाने पर इन्सान के अन्तर में फिर मालिक, शान्ति, सुख और आराम का ख्याल पैदा होता है, तब वह वैसा ही इष्ट बनाकर उस हालत की इच्छा रखता है। सुरत एक नाम रखकर या हालत का सहारा लेकर उसके सुमिरन, ख्याल या ध्यान से अपने विचारों को रोकती हुई अपने आप ठहर जाती है। इस ठहराओ के

समय में वह रोशनी देखती और शब्द सुनती हुई आनन्द प्राप्त करती है। इसके बाद फिर आनन्द से वंचित हो जाती है। क्यों ? इसलिए कि जिस स्थान पर आनन्द प्राप्त होता है, वह सूक्ष्म तत्वों से बना हुआ है। उस में परिवर्तन और अधिकता न्यूनता का होना अनिवार्य है। यद्यपि सुरत मस्ती में आकर कह देती है कि यह बहुत अच्छी जगह है, अच्छी अवस्था है, मगर तजरबा कहता है कि नहीं, यहां स्थाई सुख सकून या शान्ति नहीं। और सुनिये ! मैं कुछ और भी कहना चाहता हूं। वह यह कि सहसदल कंवल का स्थान सूक्ष्म तत्वों का समुदाय है। इसी से तत्वों की अनेक धारायें निकलकर काम करती हैं। जिसका परिणाम यह ब्रह्माण्ड अथवा त्रिलोकी है, जिस में सूरज, चांद, ग्रह और उप-ग्रह बनते और बन 2 कर बिगड़ते रहते हैं। यूं ह समझो कि जिस प्रकार तुम्हारे मन के अन्तर उत्पत्ति और प्रलय का प्रबन्ध है, वैसा ही सिलसिला इस संसार में भी है मगर क्या इन्सान सदा इस खेल में दिल लगा कर आनन्द

और खुशी लेता रहता है ? नहीं। हर्ष के साथ शोक का दुखदायक तजरबा भी उसे साथ ही साथ करना लड़ता है। इसलिए उसे पूर्ण रूप से सुख और शान्ति नहीं मिलती। जो मिलती है वह केवल अस्थाई रूप में। इसी कारण पूर्वजों ने बाह्य प्रभावों से प्रभावित होकर तलाश करने के बाद यह परिणाम निकाला कि यह ज्योतिस्वरुप ही इस सारे संसार का आधार है मगर वास्तव में इस में भी पूर्ण शान्ति और स्थाई सुख नहीं। जब तक मानवीय सुरत इस की ओर ध्यान दे रही है और खेलती है, वह खुश है मगर समय आ जाता है, जब उससे उदासी पैदा हो जाती है। इसलिए यह ज्योति स्वरुप काल निरंजन स्थाई सुख के प्रदान करने वाला नहीं हो सकता। यही भूलोक, आलमे जबरूत सहसदल कंवल है।

जब तजरबा से यह मालूम हो गया कि यह अवस्था सूक्ष्म तत्वों के खेल या स्वभाविक गति का स्थान है और इस में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों हो अवस्थायें हैं, तो फिर इन्सान आगे को चलता है।

आगे चलने से अभिप्राय यह है कि वह अपनी कामना इच्छा, और लालसा या सुख का इष्ट बनाते हुये, जिसकी गुप्त रूप में उसे तलाश है, ऊपर को खिचता है। जब संकल्पों या एकाग्रता के अन्तर सूक्ष्म तत्वों की गांठ का स्थूल भाग, जिससे शब्द, घंटा या रोशनी पैदा होती थी, गुम होने लगता है, उस समय सुरत का खिचाव होता है। उस खिचाव में वह अपनी शारीरिक चेतनता को भूलना आरम्भ कर देता है और ग़नूदगी की अवस्था छाने लगती है। अगर इन्सान इस ग़नूदगी में फंस गया तो नींद के वश में हो जाता है। और अगर उसने अपने विचार, इष्ट या गुरु को अपने सामने रखा, तो उस खिचाव की अवस्था से ऊपर को चेतनता की अवस्था मैं आ जायेगा।उस अवस्था का नाम बंकनाल है। जो कितनी दूर तक नीचे जाकर ऊपर को जाती है। प्रत्येक अभ्यासी पर अपने शरीर के अन्तर यह अवस्था छा जाती है। नीचे जाने का अभिप्राय एकाग्रता से है। जिसमें ग़नूदगी गिनी जाती है और इन्सान अपने इष्ट को भूल जाता है। अगर भूल गया, तो नीचे चला गया और इष्ट का

संस्कार रहा तो सुरत ग़नूदगी की अवस्था में इष्ट की ओर जाती है। इसका अभिप्राय ऊपर आना है। यहां पर केवल उसका इष्ट, जिसे वह चाहता है, रह जाता है। यह स्थान त्रिकुटी का है। वास्तव में मन की सूक्ष्म धारें ही इस मूर्ति की शकल या इष्ट के रूप में कायम होती हैं। इनमें लहराने और मौज में आने का गुण होता है। क्योंकि ख्याल में इष्ट निश्चित किया हुआ होता है इसलिए वह लहरें मारता है और यहां सिवाये प्रेम और इश्क के ठहराओ नहीं हो सकता। मगर याद रहे, जो मूर्ति तुम्रारे अन्तर में पैदा होती है, वह तुम्हारा अपना ही मन है, बाहर से कुछ नहीं आता। तुम्मारा अपना संकल्प ही, जो इष्ट के रूप में तुम से निकला है, मूर्ति की शकल में कायम होता है। इस स्थान के आनन्द और खुशी को वही व्यक्ति अधिक अनुभव करता है, जो अज्ञानी है। विचारवान पुरुष की वह अवस्था नहीं होती जो अज्ञानी की होती है क्योंकि अज्ञान को यह मालूम नहीं होता कि वह रूप अथवा इष्ट जिस के सहारे वह मस्ती या आनन्द प्राप्त कर रहा है, उसका अपना ही ख्याल

है। वास्तव में इन्सान अपने अन्तर से एक इष्ट की शक्ल निकाल कर, उसे अन्य समझ कर उस से प्रेम करता है। यही त्रिकुटी है और यह त्रिपुटी है। ध्यान, ध्याता और ध्येय यह क्या है ? ध्यान करने वाले सूक्ष्म पदार्थों की गांठ मन ! उसके गर्भ से जो विचार निकला वह ध्यान है और जिसे उसने अपना पूज्य देव बनाया या समझा है वह ध्येय है। यह केवल अज्ञान की अवस्था में होता है।

प्र०- तो वहां △ की शक्ल नहीं ?

उ०- भोले भाले लोग शब्दों के जाल में भटक रहे हैं। जिन्हें तिकोन इस प्रकार नज़र आती है, यह उनका बाहरी ख्याल लिया हुआ कल्पित बनाई गई शक्ल है। यहां पर त्रिकुटी के अर्थ वास्तव में तीन अवस्थाओं के हैं। इस जगह लाल रंग की रोशनी है।

प्र०- लाल रंग कहां से आता है ?

उ०- तुम्हारे शरीर के अन्तर खून है और उसी से जीवन स्थित है। वास्तव में यह क्या वस्तु है ? यह स्थूल पदार्थ की गति और मेल से होने वाली क्रिया का परिणाम है। इसी प्रकार सूक्ष्म

पदार्थ में भी गति होती है, जब यह गति अधिक लहरें नहीं मारती अर्थात बाहर मुखी नहीं होती तब यह अन्तर की ओर अर्थात अपने आप में खिचती है । इस खिचाओ में तीन अवस्थायें पैदा होती हैं। "ध्याता, ध्येय और ध्यान" अथवा ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इस जगह यह तीनों अवस्थायें मिली जुली होती हैं। पहली ख्याल, दूसरे ख्याली इष्ट और तीसरे ख्याली मेल। इस ख्याल या सूक्ष्म मन ने अपने ही गर्भ से तीन अवस्थायें पैदा कीं और अपने ही ख्याल में आप मग्न होने लगा । जब वह बाहर की ओर फैलता है, तो नीचे सहसदल कंवल में आ जाता है, उस समय उसकी धारें विचारों के रूप में प्रकट होती हैं। जब वह सुकड़ जाता है, तब एकाग्र होता है और अपनी ही एकाग्रता से आनन्द लेता है। क्योंकि वहां एकाग्रता के कारण एकता पैदा होती है, इस लिये वह (Energy) शक्ति वहां पर लाली के रंग में भासती है। क्योंकि इन्सान ने अपने ख्याल से गुरु मूर्ति में यह इष्ट कायम किया था

इसलिये गुरु की मूर्ति लाल रग की नज़र आती है। वास्तव में वह लाली सूक्ष्म तत्वों की गति का परिणाम है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं।

प्र०- उस स्थान से वेद आदि कैसे प्रकट होते हैं ?

उ०- यह मन संकल्पों विकल्पों का भण्डार है। सब विधियां और उपाय अर्थात सब कुछ इसी स्थान से फूटता है। वेद आदि क्या हैं ? सिद्धान्त हैं उपाय हैं, जो सामाजिक जीवन को सुखपूर्वक गुजारते हुए ध्यान के रुख को ऊपर की ओर फेरने के लिये बनाये गये हैं। इसलिए ऐसा कहा गया है। यह तमाम विधियां उपाय आदि सिवाये मन के और कहां से पैदा हो सकते हैं ? सोचो ! जिस रूप में तुम्हारे अन्तर धारणा, ध्यान का एक स्थान है, उसी रूप में ब्राह्मांड में भी एक स्थान है. जां सूक्ष्म पदार्थ का भण्डार है। उसका ज्ञान केवल अनुभव से होता है और अनुभव विना अन्तर मख होने के न होगा, न होगा। सत्गुरु का प्रेम इस अनुभव के पैदा करने का सरल से

सरल उपाय है और प्रेम के सहारे ही त्रिकुटी को पार कर लिया जा सकता है। इस तजरबा और अनुभव के बाद इन्सान की दृष्टि में यह संसार खुशी का नगर बन जाता है। अब क्योंकि खुशी और आनन्द सूक्ष्भ पदार्थ की एकता से पैदा हुए थे और वह पदार्थ आप सदैव गति में रहता है, इसलिये यह अवस्था भी सदैव न रह सकेगो एकता व एकाग्रता का टूटना अनिवार्य है। एकाग्रता में गिरावट आते ही रूखापन सा आ जायेगा। यही कारण है कि बड़े २ अभ्यासी भक्त, योगी किसी न किसी समय गिर जाते हैं। इसलिये संत फरमाते हैं कि यह अन्तिम स्थान नहीं। आप सोचो! मैं क्या कह रहा हूं।

प्र०- अच्छा यह बताओ कि यहां बादल की गरज, ओम् की ध्वनी या अल्ला हू की सदा क्यों होती है?

उ०- सूक्षम तत्वों से बने हुए मन के अंश अपने आप एकाग्रता की अवस्था में गति में आते हैं और गति से आवाज़ पैदा होती है। क्योंकि इस हालत में मन के परमानुओं या सूक्षम अंशों में बड़ा

भारी प्रेम और खिचाओ होता है, इसलिये बादल की गरज सी आवाज़ सुनाई देती है और इन्सान इन बाहरी आवाज़ों के आश्रय से प्रकट करता है। मगर याद रहे कि कोई भी अवस्था ऐसी नहीं, जो सदा एक रस रहे। किसी समय इन्सान को अभ्यास मे कुछ अनुभव प्राप्त होता है और किसी समय कुछ।

प्र०- कर्त्ता :-हां ऐसा ही होता है। मगर क्यों ?

उ०- दात्ता :-क्योंकि मन के परमानुओं में न्यूनता अधिकता की अवस्था आती रहती है।

प्र०- हदायतनामा में इस स्थान की लम्बाई एक लाख योजन बतलाई गई है। क्या यह ठीक है।

उ०- हां ठीक है ?

प्र०- कोई प्रणाम दीजिये।

उ०- इस युग में प्रणाम देना आसान है, क्योंकि लोग साइंस जानते हैं। सुनो ! पृथ्वी पर थल से जल अधिक है और जल से वायु का मण्डल बड़ा है। वायु से अग्नि और अग्नि से आकाश अधिक जगह घेरे हुये है। यह स्थूल मादा का हाल है। सूक्षम मादा इससे भी अधिक जगह घेरता है। सहस-

दल कंवल का क्षेत्रफल, जिस में यह सब स्थूल पदार्थ पैदा हुआ करते हैं, उनसे भी अधिक होना चाहिए। इसी तरह जूं जूं ऊपर चलते जायें, नियमानुकूल क्षेत्रफल भी अधिक होता जायेगा। क्योंकि यह स्थान बाहर है. इसलिये साधारण बुद्धी का व्यक्ति भी अनुमान लगा सकता है कि जो केन्द्र सूक्ष्म तत्वों का भण्डार है वो कितना विशाल होगा।

प्र०- हम मानते हैं कि शारीरिक व्यापार से मन का दायरा बहुत बड़ा है, मगर उस के नाप का अनुमान कैसे लगाया गया ?

उ०- जैसे हिमालय पर्वत की उंचाई नापी गई, जिस प्रकार सूरज ग्रहण और चांद ग्रहण का ठीक समय ज्ञात होता है। अगर यह बातें ग़लत हैं तो यह लम्बाई भी ग़लत है। तुम पृथ्वी की लम्बाई और व्यास आदि और ज्योतिष के हिसाब को कैसे ग़लत कह सकते हो ? इसी प्रकार यह भी अनुभव का विषय है। चाहे पढ़ने वालों को इस लम्बाई का पूरा विश्वास न हो फिर भी ऊपर के उदाहरण से मानना ही

पढ़ेगा। जब कि पृथ्वी की लम्बाई कई हज़ार मील है और जल, अग्नि, वायु के लोक का विस्तार क्रमशः अधिक होता गया है, तो आप को विश्वास हो जाना चाहिये कि बाणी में जो इन लोकों की लम्बाई और चौड़ाई दी हुई है, वो भी ठीक है। वर्तमान युग में साइंस वालों ने फोटो द्वारा यह सिद्ध किया है कि हमारे वर्तमान सूर्य के परे एक और बड़ा सूर्य है। जिस का चित्र (कैमरा) में आ रहा है और साइंसदान इसे उस दुनियां को रोशन करने वाले सूर्य से लगभग 10,000 मील परे बताते हैं और मील का हिसाब यह कि एक मिन्ट में रोशनी जितनी दूरी तय करती है, उसे एक मील समझा जाता है। इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिए।

प्र०- क्या यह सम्भव है कि मनुष्य इस शरीर में रहते हुये अपने आप इन लोकों के हालात देख सके।

उ०- हां सम्भव है और उसका नियम है। जिस प्रकार हज़ारों मीलों से इन्सान टैलीपैथी और टैलीविजन के नियमानुसार रेडियो द्वारा आवाज़

सुन सकता और शकल देख सकता है इसी प्रकार मानवीय सुरत अपने दिमाग़ में विशेष केन्दर पर एकत्र होकर (Waves) लहरों के द्वारा ऊंचे लोकों या देशों की स्थिति को भली प्रकार देख सकती है और वहां की आवाज़ें सुन सकती है।

प्र०- क्या ऐसी इच्छा रखने वाले इन्सान अपने शरीर को छोड़कर उन लोकों में जा सकते हैं?

उ०- नहीं, शरीर नहीं छोड़ना पड़ता बल्कि इन्सान उन लोकों से सम्बन्ध पैदा करता है। जैसे रेडियो में बोलने वाला व्यक्ति रहता तो अपनी जगह पर है लेकिन उस का सम्बन्ध दूसरी जगह से जुड़ जाता है। अधिक विस्तार में जाने से विषय लम्बा हो जायेगा। इसलिये नियम समझा दिया गया, शेष तुम आप ध्यान पूर्वक समझ सकते हो।

प्र०- लेकिन क्या यह ज़रूरी है कि प्रत्येक अभ्यासी इन तजरबों, नीच ऊंच लम्बाई आदि से गुज़रे?

उ०- हरगिज़ नहीं।

स्वामी जी महाराज वास्तव में सत्य स्वरूप अथवा मालिके कुल के साक्षात रूप थे। आप ने

सच्चाई को इस हिदायतनामा में अपने अनुभव अर्थात ज़ाती तजरबा के आधार पर प्रकट किया । आप साफ़ लिखते हैं कि यह दर्जे काल मत के हैं, इनसे केवल गुज़रना और थोड़ा अनुभव करना ठीक है ।

सतगुरु ने कमाई की, हम उनकी कमाई से लाभ उठाते हैं । हमें परिश्रम करने को कोई अधिक आवश्यकता नहीं । हम केवल उनकी आज्ञा का पालन करें और वो इस प्रकार कि उस नाम को जो उन्होंने हमें प्रदान किया है, पकड़ें । वो नाम क्या है ? "राधास्वामी" इस समय उसे अन्तर का शब्द समझें । केवल अन्तर में एकाग्र हो जाओ, अन्तर की आवाज़ को सुनो । आवाज़ क्या है ? तुम्हारे मन की अन्तरीय लहरों की गति का परिणाम ! एकाग्रता की अवस्था में तुम्हें अपने आप इन केन्द्रों का अनुभव हो जायेगा, मगर इनमें ठहरने का हुक्म नहीं । इसलिये कि यह पदार्थ से बने हुये हैं और पदार्थ सदा गति में रहता है । और सुरत को नीचे ऊपर लाता रहता है । इस सूक्षम पदार्थ का नाम, जिससे मन बनता है, काल है । यह सदैव एक हालत में नहीं रहता । मन की

एकाग्रता से आनन्द, खुशी और मस्ती मिलेगी मगर इसमें भी ठहराओ नहीं। बहां सदैव ठहराओ नहीं मिल सकता। क्योंकि जहां गति है, वहां शान्ति कठिन है और इस अस्थाई हालत में कष्ट अनुभव होता है। इसलिये अभ्यास और भोग के बाद ऊपर चलने का आदेश है। कई लोग तो इसे अन्तिम स्थान समझ लेते हैं मगर वास्तव में यह आखरी मंज़िल नहीं।

प्र०- मगर पहले यह समझाईये कि अगर इन सब दृश्यियों के पूर्ण रूप से अनुभव करने की आवश्यकता नहीं तो फिर इस हिदायतनामा के लिखने की क्या आवश्यकता थी ?

उ०- आवश्यकता इसलिये थी कि लोगों को राधाश्वामी दयाल के प्रकट होने के समय संतमत में, जो एक प्राकृतिक उपाय है, विश्वास न आता। उन्हें समझाने के लिये पूरी रोशनी डाली गई ताकि उन्हें विश्वास हो जाये कि जिन धर्मों का वो पालन करते हैं या जिस खुदा की पूजा करते हैं, वो वास्तव में उनका अपना ही मन

और अपना ख्याल है। अन्य शब्दों में काल है और वो केवल अपनी ग़लत समझ से अज्ञान में फंस कर व्यर्थ भेदभाव करते हैं और लोगों को दुख पहुंचाने का कारण बनते हैं।

प्र०- तो आप का आशय यह है कि दुनियां जो खुदा की पूजा या इबादत आदि करती है, वो ग़लत है ?

उ०- मैं ग़लत नहीं कहता बल्कि मेरा कहना यह है कि यह उनका अपना ख्याल है। पुजारी और पूज्य देव इन्सान का अपना मन है, जो कि काल है।

प्र०- तो जो लोग गुरु की पूजा करते हैं और उनके सामने अपना सिर झुकाते हैं, वो उनका मन नहीं ?

उ०- हां। गुरु और चेला भी मन के अन्तर हैं मगर पूरा गुरु मानवीय सुरत को सतलोक की ओर ले जाता है, जहां गुरु और चेला दोनों गुम हो कर केवल हकीकत शेष रह जाये। यही कारण है कि राधास्वामी मत झूठे गुरुवाद का खण्डन

करता है और पूरे गुरु की तलाश का उच्च स्वर से आदेश देता है।

प्र०- अन्तर में जो सत्गुरु सहायता करता है, क्या उस का ज्ञान बाहरी सत्गुरु को होता है ?

उ०- इन्सान के अन्तर अभ्यास के सिलसिला में जो सत्गुरु प्रकट होता है, वह वास्तव में इन्सान का अपना आपा या मन ही होता है, हां, इन्सान का अपना आपा या मन बाहरी पूर्ण गुरु के संस्कार से (*Magnetize*) अर्थात आकर्षण शक्ति ग्रहण किये हुए होता है और जिस प्रकार के विचार या प्रभाव बाहरी सत्गुरु के संस्कार, संगत (*Touch*)) मेल द्वारा इन्सान के मन में प्रवेश हुए होते हैं वही प्रकट रूप धारण करके अपना तमाशा दिखाते हैं और सत्गुरु की शक्ल में प्रकट होकर मानवीय सुरत को ऊपर की ओर ले जाते हैं। यह बातें मैं अपने अनुभव के के आधार पर कह रहा हूं। मेरे पास प्रायः सत्संगी आते हैं और अभ्यास के सिलसिला में सहायता की इच्छा करते हैं। में जो ख्याल या संस्कार उन्हें देना चाहता हूं और पहले अपने

आपको उस हालत में कायम कर लेता हूं और वह अपने प्रेम और इच्छा की स्थिति के अनुसार संस्कार ले जाते हैं और वह संस्कार उनके मनों में बढ़ता हुआ समय आने पर अपना प्रभाव दिखा देता है। इसी नियम अनुसार काम तो वास्तव में इन्सान को आप करना पड़ता है लेकिन दया और कृपा बाहरी हस्ती की शामिल रहती है।

प्र०- तो इसका मतलब यह हुआ कि जो कुछ समझ ज्ञान आदि इन्सान को अपने अन्तर में प्राप्त होता है या कौतुक लिखाई देते हैं, उनके कारण बाहरी संस्कार और बाहर के प्रभाव होते हैं। फिर जो यह कहा गया है कि सब कुछ इन्सान के अन्तर में है, ठीक नहीं।

उ०- आप का ख्याल ठीक है। वेदान्ति या ज्ञानी जो यह समझते हैं कि सब कुछ इन्सान के अन्तर में है। यद्यपि उन की यह समझ ग़लत तो नहीं, फिर भी अधूरी ज़रूर है। इन्सान बाहर के प्रभावों के अधीन है। जितनी फुर्नायें ख्याल और शकलें इन्सान के अन्तर प्रकट होती हैं, सब बाहर के प्रभावों का परिणाम है, जिन्हें उसने देखने,

सुनने या छूने आदि के द्वारा प्राप्त किया हुआ है।

प्र०- कई बार हमारे मन में ऐसे विचार पैदा होते हैं। इसके अतिरिक्त स्वप्न और अभ्यास में ऐसी शकलें दिखाई देती हैं, जिनका कोई बाहर का कारण समझ में नहीं आता। इसका क्या कारण है?

उ०- इस तमाम ब्रह्माण्ड से, जिसमें लोक लोकान्तर आदि गिने जाते हैं, हर समय विचारों की धारें निकलती अर्थात खारिज होती रहती हैं, जो कि प्राकृतिक हैं। जैसे सूरज से किरनें। यद्यपि हम बाह्य इन्द्रियों द्वारा इन धारों का कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, फिर भी जब मन को एकाग्र करके अपने दमाग़ में किसी केन्द्र पर बैठते हैं, तब वह वहां पर प्रभावित होकर अपना खेल दिखाती हैं। अज्ञान के कारण हमें पता नहीं होता और हम ग़लती से समझ लेते हैं कि यह सब कुछ हमारे अन्तर में विद्यमान है, यद्यपि वह बाहर के प्रभावों का परिणाम होता है।

क्योंकि कई अवस्थाओं में हमारा अपना मन साफ नहीं होता, इसलिए बाहर के प्रभाव हमारे स्वभाव

अथवा वर्तमान स्थिति पर कई प्रकार के प्रभाव पैदा करते हैं । बात बहुत सूक्ष्म है । शब्द नहीं मिलते, जो अधिक व्याख्या करूं । इसलिए यह अतिआवश्यक है कि इन्सान किसी पूर्ण पुरुष का सतसंग करे । अन्य शब्दों में बाहरी सत्‌गुरु साधनसम्पन्न, निस्वार्थ और अपनी वाणी या ख्याल का पूर्ण रूप होना चाहिये और कम से कम उस समय ज़रूर अपने ख्याल का पूर्ण रूप बना हुआ हो जबकि वह सतसंग कराये या जिस ख्याल की वह सतसंग में शिक्षा दे रहा हो, आप उसमें ठहरा हुआ हो ।

प्र०- राधास्वामीमत की किताबों में लिखा है कि गुरु की प्रसादी खाओ, सेवा करो, पूजा करो, इस का क्या अभिप्राय है ?

उ०- हां ! ठीक है । जिन सज्जनों को जो आदत पड़ी हुई है, वह वैसा करने के लिए विवश होते हैं और जब तक उस आदत के अनुसार चलकर तजरबा प्राप्त न करेंगे, उन्नति से वंचित रहेंगे । क्योंकि इन्सान को बचपन से मिले हुये संस्कारों के कारण बन्दगी की आदत पड़ी हुई है, इस लिये यह उपाय निकाला गया और यह सेवा

आदि भी पूरे गुरु की की, जाती है, जो अपने वचनों से इन आदतों को धीरे धीरे दूर करा देता है और अपने जैसी स्वतन्त्र और पूर्ण हस्ती बना देता है। राधास्वामीमत में कई प्रकार की सेवा प्रचलित है। जो आदमी जिस प्रकार की सेवा का अभ्यस्त (*Habitual*) होता है, उसी प्रकार की सेवा उससे ली जाती है। उसका उद्देश्य केवल यह होता है कि जीव की लगातार अध्यात्मिक उन्नति होती चले और वह अच्छी अवस्था में आ जाये।

क्षमा करना! पूरे गुरु की सेवा परतन्त्रता नहीं बल्कि सच्ची स्वतन्त्रता है। धन्य हैं वह व्यक्ति, जिन्हें किसी सच्चे सन्त या फकीर के दर्शन हुये और सेवा का अवसर मिला। वह अपने बचनों द्वारा इन्सान को स्वतन्त्र कर देते हैं और इन्सान सहज में ही जीवन मुक्त अवस्था मैं आ जाता है।

प्र०- गुरु की सेवा और उनके दिये हुये प्रशाद या हार आदि पहनने से और भी कोई विशेष लाभ है?

उ०- बहुत लाभ हैं! प्रकृति का नियम यह है कि जिस हालत में या जिस ख़्याल पर प्रशाद देने वाला

ठहरा होता है, उस हालत का संस्कार धारों द्वारा प्रशाद में आ जाता है और जो आदमी उस प्रशाद या हार आदि का प्रयोग करता है, उस के विश्वास के दर्जा या स्थिति के अनुसार वह हालत उस में भी आ जाती है।

यह ख्याल कि सत्संगों में प्रशाद देने का काम एक प्रथा है, ग़लत है। जो गुरुआई करते हैं, अगर वह पहले आप उस ख्याल का क्रियात्मिक रूप बन कर या उस पर सुरत को टिकाकर प्रशाद दें, जिसका कि वह संस्कार देना चाहते हैं, तो सत्संगी जनों को बहुत लाभ पहुंच सकता है।

क्योंकि मैंने आप इन सब बातों का अनुभव किया है, इसलिए अब भी इस नियम का अनुयाई हूं। आदत के रूप में कोई काम नहीं करता। अच्छा ! अब आगे चलो :-

सुन्न स्थान या आलमेलाहूल का वर्णन

जिस इन्सान के अन्तर अज्ञान है और उसके कारण वह पूज्यदेव को अपनी ज़ात (स्वरूप) से भिन्न समझकर ध्यान में लाता है, जब ध्यान की अवस्था

में वह उस पूज्यदेव या इष्ट से प्रेम के आवेश के प्रभावाधीन मिलता है तब वह अपने कल्पित पूज्यदेव या अन्य शब्दों में अपने आप में खिच जाता है। उस समय उसमें मस्ती आ जाती है। जिसमें उसके सब संकल्प और वृत्तियां उलट कर अपने आप में लय होने लगती हैं। उस हालत का नाम सुन्न है। यह हालत दमाग़ में उस जगह पैदा होती है, जहां ओजस का मुकाम है।

चुवत अमीं रस भरत ताल जहं सबद उठै असमानी हो।
सरिता उमड़ सिन्ध को सोखै नहीं कुछ जात बखानी हो।
चांद सूरज तारागन नहीं वहं, नहों वहं रैन बिहानी हो।
बाजै बजैं सितार बांसुरी, ररंकार मृदु बानी हो।
कोटि झिलमिली जहं वहं झलकै, बिनु जल बरसत पानी हो
शिव अज विस्नु सुरेस सारदा, निज 2 मति उनमानी हो।
दस अवतार एक तत राचैं, अस्तुति सहज सुहानो हो।
कहै कबीर भेद की बातें बिरला कोई पहिचानी हो।
कर पहिचान फेर नहीं आवे, जम जुलमी की खानी हो।

प्र०- क्या इस मुकाम पर चांद सी रोशनी होती है? और अमृत या अमीं रस से क्या अभिप्राय है?

उ०- हां वहां चांद सी रोशनी होती है और वही ओजस का मुकाम है।

दमाग़ के दो भाग हैं, उनमें एक पीले रंग का और दूसरा सफैद रंग का, जब मानवीय सुरत वहां जाती है, अमीं रस देखती है। ओजस नाम है (जौहर) रत्न का। तुम देखो। दमाग़ के अन्तर ओजस का भण्डार है। यही ओज़स वाहर आकर अमीं रस अर्थात जोवन देने वाला बन जाता है। इस औजस में Germs (जीवाणु) होते हैं, जो जीवन रखते हैं। बह हंस हैं। जब मानवीय सुरत दमाग़ में वापस जाती है, वो उन (Germs) जीवाणुओं को जिनको मछलियों से उपमा दी गई है, Focus कार्यकेन्द्र नियम अनुसार इस ओजस रूपी अमृत या अमीं रस के स्रोत में देखती है जिस प्रकार खुरदबीन द्वारा एक छोटी से छोटी चीज़ बड़ी मालूम देती है, इसी तरह वो जीवाणु बड़े मालूम होते हैं। क्योंकि दमाग़ के अन्तर एकाग्रता होती है, इसलिये वहां का सारा कारखाना बड़ा मालूम होता है और सुरत उसका आनन्द भोगती है। क्योंकि रोशनी गति के कारण होती है और ओजस कुछ सफेद और कुछ पोले रंग का होता है, इसलिये वहां रोशनी चांद सी नज़र आती है।

प्र०- हीरों की कतारें और पन्नों के वृक्ष आदि क्या हैं।

उ०- वहां की रोशनी की किरणें और मस्ती में अन्तर के बोधभान और वहां के खेल आदि।

प्र०- क्षमा करना। आप की यह व्याख्या ज्ञानशक्ति और बुद्धि के आधार पर मालूम होती है।

उ०- तो असली क्या है ? लोगो ! तुमने अभ्यास किया है ? बताओ इसके सिवाये हंस और क्या हैं ? ऐ भोले भाले लोगो, समझो ! तुम्हारी सुरत तुम्हारे अन्तर में रहती है और वहाँ का दृश्य देखती है बाहर कहां जायेगी ! यह सुन्न का मुकाम राधास्वामीमत के नियमानुसार सूक्ष्म पदार्थ से बना हुआ है, अभी चेतन देश तो आगे है। यह काल का देश है। काल वो प्रकट रूप है, जो सतपुरुष के साथ बाहर की ओर रहता है।

जिस प्रकार हमारा शरीर है ठीक इसी तरह ब्रह्मान्ड का शरीर भी है। जैसे हमारे अन्तर ओजस का स्थान है, उसी तरह ब्रह्मान्ड में ऐक ऐसा स्थान है, जहां अमीं रस है। अगर वहां जीवन नहीं था तो नीचे कैसे गति में आया ? पृथ्वी, सूरज, चांद सब में

जान है, चेतनता है । इन स्थानों में रूहें हैं बल्कि रूह भी आप एक लोक है ।

प्र०- क्या आप ने देखी हैं ?

उ०- हां ! अनुभव से, अनुमान की हालत को गहरा करने से । इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं ।

प्र०- उदाहरण देकर समझाइये ।

उ०- सुनो ! यह दृश्य उन्हें नज़र आते हैं, जो प्रेम के जज़्बा में एकाग्र होते हैं । जब एक साईंसदान किसी वृक्ष को बोलते हुए मालूम करना चाहता है, वो क्या करता है ? वो अपने ख्याल को उस में प्रवेश कर देता है और एकाग्रता की अवस्था में उसे वृक्ष के बोलने का दृश्य नज़र आता है अथवा अन्य शब्दों में वो अपने अनुभव में उन वृक्षों को बोलते हुए सुनता है । यह तो केवल अनुभव का विषय है । मैंने साफ साफ कह दिया, इसके विपरीत दूसरे लोग भेदभाव से काम लेते हैं । और सुनो ! तुम स्त्री भोग के समय आनन्द और खुशी लेते हो । उस समय तुम्हारा रक्त और शक्ति इकट्ठी हो जाती है,

तब वीर्य रूपी अमृत तुम्हारे अन्तर से निकलता है। क्या स्त्री के इष्ट के बिना तुम उस आनन्द को ले सकते हो? नहीं, हरगिज़ नहीं। इसी प्रकार बिना इष्ट के प्रेम के तुम कभी भी उम सुन्न के मुकाम को प्राप्त नहीं कर सकोगे। दुनियां भक्तों और योगियों को अज्ञानी का नाम देती है मगर इस रस और आनन्द को, जो इस मुकाम पर मिलता है सिवाये अज्ञानी के दूसरा कौन प्राप्त कर सकता है। यह बहुत सूक्ष्म बात है जो तुम्हें बतलाई गई है। महर्षि दयाल जी ने अन्तिम बचनों में फरमाया है कि आनन्द केवल अज्ञान में है, ज्ञान में आनन्द नहीं। जब तक इन्सान द्वैत का पक्ष नहीं लेगा, वो कभी भी इस आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि अकली ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले उदासी का जीवन गुज़ारते हैं।

प्र०- बहुत से अभ्यासी अपने अन्तर में चांद की रोशनी देखते हैं। क्या वह सुन्न में होते हैं।

उ०- वह असली सुन्न में नहीं होते बल्कि वह सुन्न की अवस्था को निचले स्थानों पर देखते हैं।

असली सुन्न के स्थान पर तो मस्ती और आनन्द होता है, सरूर मिलता है और समाधि लगती है, जिसके अन्तर सुरत झूमती है। वहां का आनन्द ब्यान नहीं किया जा सकता। क्योंकि ओजस में मस्ती होती है, इसलिये जब सुरत वहां जाती है, तो मस्ती आ जाती है। जिनका वीर्य कमज़ोर होता है उन्हें मस्ती थोड़ी मिलती है। इसलिये वीर्य की रक्षा आवश्यक बताई गई है, जो अभ्यासी कामी होते हैं, वह सदा शिकायत करते रहते हैं कि अभ्यास नहीं बनता। जिसका वीर्य ही कमज़ोर है, उसे यह आनन्द किस तरह प्राप्त हो सकता है? अभ्यास के समय में इन्सान को संयम से काम लेना चाहिये। सुनो! स्पष्ट कह दूं कि वीर्यहीन पुरष ही चंचल वृत्ति वाले होते हैं। जब वीर्य की कमज़ोरी दुनियां के साधारण व्यवहार में उपरामता लाती है, तो अभ्यास की अवस्था में वह क्यों न प्रभावित होगी। और जबकि वीर्य की शक्ति शरीर को कायम रखती है और चुस्ती लाती है, तो क्या यह सम्भव नहीं कि जो ओजस के स्थान पर सुरत

को ठहरायेगा, उसे आनन्द, खुशी और मस्ती मिलेगी। 'जो पिन्डे सो ही ब्रह्माण्डे', मैं रोचक और भयानक बातें इसलिए नहीं कहता कि उन से पाखण्ड बड़ता है और सच्चाई गुम होती है। अन्त में लोग मेरे सत्गुरु के पंथ राधास्वामीमत कबीरमत या नानकमत (जो चाहो नाम रख लो) की निन्दा करते हैं। मैंने इसी सच्चाई को प्रकट करने के लिए मौज की प्रेरणा से लेखनी उठाई है। लोगों को अभ्यास करते वर्षों गुज़र गये मगर लालसा नहीं मिटी, और इसी ख्याल में उनके प्राण निकल जायेंगे। यह ख्याल कि मरने के बाद मोक्ष या निजधाम मिलेगा, ग़लत है।

जा को दर्शन इत है, ता को दर्शन उत्त।
जा को दर्शन इत्त नहीं, ता को इत्त न उत्त।

पढ़ने वालो! एक निःस्वार्थ, सत्यप्रिय इन्सान की आवाज़ को सुनो। जो समझा अनुभव किया, वह लिख रहा हूं अगर तुम में किसी भाई ने अधिक समझा हो, तो मुझे बताओ। मैं उस का दास हूं। मगर यह बात याद रखो कि अन्धविश्वास की बात थोड़े दिन ही कायम रहती है।

प्र०- मगर राधास्वामी मत के नियमानुसार तो यह स्थान पुरुष और प्रकृति का है ! इसके विपरीत आप उसे दमाग़ में ओजस का स्थान बता रहे हैं ?

उ०- पुरुष और प्रकृति वास्तव में *Positive* मुसबत और *Negative* मनफी हालतें हैं। दमाग़ के अन्तर जो भाग मुसबत हैं, वह मनफी की ओर खिचते हैं। इसलिए एक दूसरे का आकर्षण पैदा होता है, जिसे अंग्रेज़ी में *Attraction* कहते हैं ; और यही नियम सब जगह काम करता है। यही आकर्षण प्रेम कहलाता है। पुरुष के अन्तर मुसबत पन होता है और स्त्री के अन्तर मनफी पन होता है। तभी तो उन में स्वभाविक रूप में खिचाव होता है। और जो स्थान सूक्ष्म पदार्थ का बना हुआ है उस में भी यह दोनों अवस्थायें होती है। यही कारण है कि यहां मस्ती और आनन्द का ज़ोर होता है। पुरुष और प्रकृति केवल मुसबत पन और मनफी पन होता है और इस स्थान पर सूक्ष्म पदार्थ में दो धारें होती हैं। जिन से सांरगी या किंगरी की सी आवाज़ निकलती है। जो होश

और समझ के साथ अभ्यास करते हैं, वह यह दर्जा शीघ्र तय कर लेते हैं। रोचक बातों में फंस कर उसी का हो रहना मानो आयु का व्यर्थ खोना है। याद रहे कि सूखे मुसबत में विश्वास रखने वाला कोई आदमी इस मस्ती और आनन्द की हालत को अपने में प्राप्त नहीं कर सकता।

अब आगे चलो महासुन्न के मुकाम की तरफ !

प्र०- क्या यहां घोर अंधेरा होता है ?

उ०- हां, मगर यह अंधेरा उस अंधेरे जैसा नहीं, जो तुम इस दुनियां में देखते हो। जिन्हे एसा अंधेरा नज़र, आता है, वह उसे कल्पित और नीचे के स्थान का समझें। अंधेरे का अर्थ यह है कि मन एकाग्रता की अवस्था में अपना मननपना छोड़ देता है, बुद्धि विचार छोड़ देती है और चित्त चिन्तन पना छोड़ देता है। अथवा यूं ह समझो कि मन, अमन हो जाता है और बुद्धि अबुद्ध हो जाती है। चेतनता (*Consciousness*) न रहने के कारण एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जैसी कि सम्भोग के अन्तिम समय इन्सान अनुभव करता

है। इसका नाम निर्विकल्प समाधि है।

प्र०- कहा गया है कि यहां चार मुकाम गुप्त हैं वह कौन से हैं ?

उ०- मन, बुद्ध, चित्त और अहंकार। यहां मन की चारों अवस्थायें अपना २ काम छोड़ देती हैं। और जो रूह इस मुकाम पर अटक जाती है, वह मजज़ूव अर्थात मस्ती में जज़्ब हो जाती है।

प्र०- वहां रूहों को बन्दीखाना की बन्दी कहा गया है। वह क्यों ?

उ०- इसलिये कि सुरत मन के निर्विकल्प हो जाने के कारण बन्ध जाती है, उस समय न तो वह अपनी चेतनता को प्राप्त कर सकती है और न ही मन की चेतनता को। यद्यपि इस अवस्था में सुख है मगर *Conciousness* के न होने के कारण वह सच्चे खुदा अर्थात ज़ात (स्वरूप) में लौट नहीं सकती।

प्र०- इस का इलाज ?

उ० इसका इलाज बाहर में किसी संत या फकीर के श्री मुख द्वारा उचारण किया हुआ शब्द और बीच में अन्तर का शब्द, इस मुकाम पर शब्द

की आवश्यकता है, बिना शब्द के न कोई इस से ऊपर (धुरधाम) गया और न जा सकता है। बिना शब्द अभ्यास, इश्क और प्रेम द्वारा हर प्रकार के इष्ट वाला इन्सान इस महासुन्न की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। मगर इसके आगे बिना शब्द नहीं जा सकता। वह शब्द बाहरी सत्गुरु की बाणी है और अन्तर में अनहद शब्द है। जो आदमी निर्विकल्प समाधि में इस शरीर को त्यागते हैं, वो इसी अवस्था अर्थात मुकाम पर जा ठहरते हैं। कहा गया कि मरते समय जैसा ख्याल होता है, वैसी ही गति मिलती है। इसलिये ज़रूरी है कि किसी जानकार गुरु से सम्बन्ध पैदा किया जाये। सुनो! जो आदमी अकाल मृत्यु मरता है अर्थात जिस की मृत्यु अकस्मात हो जाती है, हिन्दुओं में उसका क्रिया कर्म आदि विशेष ढंग से किया जाता है। क्योंकि ख्याल किया जाता है कि अकाल मृत्यु वालों की रूहों को भटकना पड़ता है। कारण यह है कि अकस्मात मृत्यु के फल स्वरूप मानवीय सुरत (*State of Perplexity*) व्याकुल्ता

की अवस्था में चली जाती है और उसे बहुत देर के बाद होश आती है इसलिये जो व्यक्ति महासन्न की मस्ती में प्राण त्याग देता है, वो ऐसी अवस्था में चला जाता है, जिसका वर्णन सिदायतनामा में महासुन्न के बन्दीखाना के रूप में किया गया है।

प्र०- यह बहुत कठिन काम है कि इन्सान इन सब दर्जों से गुज़र सके।

उ०- यह बहुत सरल है केवल प्रेम और पुरुषत्व की आवश्यकता है। जहां प्रेम, इश्क या शौक का जज़्वा पैदा हुआ, बस काम बन गया। मैं कहता हूं कि यह इतना सरल है जैसे चलना, फिरना, खाना पीना आदि प्राकृतिक कर्म हैं केवल चाह की आवश्यकता है,

प्र०- यह मनघड़त बाते हैं, वुद्धि इसे स्वीकार नहीं करती।

उ०- एक भक्त को मालिक से मिलने की लालसा हुई। उसने उसकी मूर्ति बना कर उस से प्रेम किया। मस्ती आई और उस में अपने ख्याल आदि को भूल गया, उसका मन अपने आप

अमन की अवस्था में चला गया। तुम जितने भी मस्ती में आये हुए इन्सानों को देखते हो, वे सब जाने अथवा अनजाने, उस मुकाम पर चले जाते हैं। सहंसदल कंवल से लेकर महासुन्न तक की सब सोपानें केवल प्रेम द्वारा तय हो जानी हैं मगर संतों के मत में सच्चाई की दृष्टि से इसे कालमत कहते हैं। क्योंकि यह सब मन के चक्र के अन्तर हैं। महासुन्न, काल अथवा सूक्षम पदार्थ का मुकाम है। प्रेम से इस अवस्था तक पहुंच सकते हैं। मगर जो लोग किसी इच्छा को लेकर प्रेम करते हैं, वो इस अवस्था को प्राप्त करके कुछ समय के बाद फिर नीचे गिर जाते हैं। साधारण सत्संगी जनों या योगियों को तुम ने देखा या सुना होगा। इसलिये संतों ने इसे अन्तिम लक्ष्य नहीं ठहराया। आगे चलो!

जब किसी सहारे या इष्ट के साथ चाहे वो सुमिरन का हो, ध्यान का हो, प्रकाश का हो या किसी और वस्तु का हो, मानवीय सुरत को गहरी एकाग्रता प्राप्त हो जाती है या वो निर्विकल्प अवस्था में

आ जाती है या मन, अमन हो जाता है, तो उसे आनन्द और मस्ती लेते समय ही वहां से हटना पड़ता है। अगर किसी पूर्ण गुरु का सत्संग मिल गया, तो बहुत अच्छा, वरना इन्सान इस मन की तरंगों में फंस कर सुख और दुख के थपेड़े खायेगा।

प्र०- वो सत्संग क्या होता है ?

उ०- पूर्ण गुरु अपनी सुरत से बता देता है कि ए इन्सान! यह जो कुछ तुझे प्राप्त हुआ, सब तेरा ख्याल था। तूने अपने अन्तर में अज्ञानवश अपने ही ख्याल को खुदा, गुरु या इष्ट मानकर उसी से वहीं कल्पित आनन्द और खुशी प्राप्त की। तूं आप ही प्रेमी था, आप ही प्रीतम था और आप ही प्रेम था। यह सब काम तूने अज्ञान में किया। जा, आप अपने आप में ठहर।

प्र०- यह तो ज्ञान मार्ग है।

उ०- हां इस अवस्था का नाम भंवरगुफा है। जब इन्सान इस हालत को पहुंचता है, तब वो अपने अन्तर मस्ती की हालत में अनुभव करता है कि मेरे सिवाये और कौन था! इस मुकाम पर एक

चक्कर हंडोले की तरह चक्कर खाता रहता है। इस का अभिप्राय यह है कि मानवीय सुरत के अन्तर से धार फूटती है, जो आप ही अपने अन्तर वापस चली जाती है। यूंह समझो कि एक दायरा या चक्कर सा बन जाता है। यहां सोहंग बन्सी बजती है, जिसके शब्द का यह प्रभाव होता है कि इन्सान आत्मानन्द में लय होने लगता है। जो लोग बिना निजी अनुभव के केवल सुनी सुनाई बातों के आधार पर दूसरों के साथ 'अहंब्रह्म' या 'अनलहक' की बातचीत करते हैं, वे वाचकज्ञानी हैं। यह हालत तो अन्तर की चेतनता की है। जब तक इन्सान प्रेम या योग से मन को अमन या निर्विकल्प अवस्था में न ले आये, उसे असली अनुभव नहीं होता। वाचक ज्ञान से इन्सान को शान्ति नहीं मिल सकती। उस की उदासी या घबराहट नहीं जाती। जिस से वो इस दुनियां में व्याकुल होता रहता है। बिना करनी के यह क्रियात्मिक जीवन न कभी प्राप्त हुआ और न होगा। जिन व्यक्तियों को ज्ञान

की बातें कहते हुए सुनो, उनकी शक्ल देखो। जिसे अनुभव होता है, उसकी आंखों में विशेष प्रकार का नूर और मुखड़ा प्रकाशवान होता है। ऐसा व्यक्ति अधिकतर मौन ही रहता है। अगर शारीरिक अवस्था कमज़ोर हो, तो कभी-कभी जज़्बा में आकर, अन्तर की अवस्था को प्रकट कर देता है। इस आनन्द का संभालना कठिन काम है, जो इस हालत में ख्याल के रूप से आता है, जो निजी अनुभव नहीं रखते, वह रूखे और फ़ीके होते हैं और उनके जीवन ज़बानी जमा खर्च होते हैं।

प्र०- तो इस हालत का नाम भंवरगुफ़ा है ?

उ०- हां, सुरत के साथ मन के सूक्ष्म अंश का परदा कायम रहता है। यद्यपि यह परदा बहुत ही मामूली होता है फिर भी बहुत शक्तिवान और प्रबल होता है। जो नीचे की ओर झुकने पर अपने ख्याल से नई दुनियां रच लेता है। इस अवस्था में पहुंचा हुआ इन्सान भी समय समय पर गिरता रहता है। तुम ज्ञानियों की दशा का का अध्ययन करो। वे पुत्र के मरने पर रोते हैं

और धन की हानि होने पर शोक करते हैं। अभिप्राय यह है कि रोग सोग में उन की अवस्था तबदील हो जाती है आदि आदि।

इसलिये क्या यह हालत विश्वासनीय है ?

'कदापि नहीं' भाई ! यह अनुभव का विषय और विना समाहित चित्त वृत्ति के इसका समझना कठिन काम है। इसलिये संतों ने ज्ञान और योग का भी खन्डन किया है क्योंकि यहां भी पूर्ण और नित्य सुख नहीं मिल सकता। इसलिये फ़रमाते हैं कि सतलोक चलो अर्थात् मन को छोड़ दो।

इस काल पुरुष या मन के दायरा में सदैव दुख सुख के झकोले खाने पड़ते हैं। नित्य सुख और शान्ति की अवस्था कायम नहीं रह सकती। देखो ! हर इन्सान हर समय किसी न किसी ख्याल में लीन रहता है, कोई समय ऐसा नहीं, जबकि यह मन किसी न किसी प्रकार के विचार न उठाता रहता हो। और विचारों के सिलसिला में ही उस पर दुख और सुख की अवस्थायें छाती रहती हैं। निज अनुभव के अधार पर विचार करो ! इन्सान के अन्तर कभी भी स्थाई सुख और शान्ति की हालत नहीं आती। इस पदार्थ

रचना में चाहे वो स्थूल हो, सूक्ष्म हो, या कारण, कभी भी एक रस अवस्था नहीं रहती।

प्र०- फिर इससे कैसे निकला जाये ?

उ०- सुनते चलो ! यही बात है, जो बताना चाहता हूं। ज़रा धैर्य से काम लो......अब तुमने समझ लिया होगा कि भंवरगुफ़ा क्या है ! वरना फिर दोबारा बताता हूं। यूं‌ह समझो कि जब इन्सान के मन में इस प्रकार के विचार पैदा होते हैं कि सिवाये मेरे अपने ख्याल के यहां कुछ नहीं, सब बोधभान मुझ से ही पैदा होते हैं, तो समझो कि यह कल्पित रूप है और क्रियात्मिक रूप यह है कि जब तुम्हारी सुरत अपने अन्तर में उस मुकाम पर ठहर जाती है, विचारों का प्रवाह समाप्त हो जाता है और उससे किरणें या धारें निकल निकल कर उसी में वापस लौटती हैं, तो वहां रोशनी या किरणों का एक चक्कर सा बन जाता है और बन्सरी जैसी आवाज़ सुनाई देती है। मगर यहां भी इन्सान सदा नहीं रह सकता। तुम वहां 24 घण्टे कैसे पड़े रहोगे ? एक बार का या थोड़ा थोड़ा अभ्यास मानवीय सुरत के

अन्तर एक ऐसी कल्पित धार पैदा कर देता है। जो ऊपर ब्यान की गई है और इस कल्पित मस्ती में वो अनलहक कह देता है। अब आगे चलो !

क्योंकि यहां भी स्थाई ठहराओ नहीं है, सदा के लिये स्थिरता नहीं है, इसलिये इसे भी अन्तिम लक्ष्य नहीं कहा जा सकता। बड़े बड़े अभ्यासियों और संतों के साथ रह कर तजरबा करो ! तुम्हें पता चल जायेगा कि कोई इन्सान इस अवस्था में सदा के लिये नहीं रह सकता।

जब मैं इस अवस्था में था, हज़ूर दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल के दरबार में पहुंचा आपने मुझे 'तोहफाये दरवेश' या 'फकीर प्रशाद' नामी पुस्तकें दीं, जिसमें तमाम शब्द मेरे नाम लिखे थे। वहां एक जगह आप फरमाते हैं :-

"ज्ञान बीच की कड़ी है, यह नहीं इष्ट फकीर"

हुकम हुआ, अभी समय नहीं आया, दस बर्ष के बाद मेरे पास आना। अभी इस वर्तमान हालत का आनन्द भोगो, चाहे यह स्थान लक्ष्य नहीं है। मैं भी

यही कहता हूं कि ज्ञान ध्येय अवस्था नहीं है। ध्येय अवस्था क्या है? इसे समझने के लिए आगे चलो।

अपनी सुरत को ऊपर ले जाकर विचार और एहसास को छोड़ दो अर्थात जो ख्याल, फुरना और एहसास उठता है, उनसे सुरत को अलग करो। कैसे? 'अन्तर शब्द से' बिना अन्तरी शब्द की धार के पकड़े, सुरत ख्याल को नहीं छोड़ेगी, ध्यान, सुमिरन, प्रकाश, अभिप्राय यह है कि तुमने जिसका भी सहारा लिया था, सब का सब छोड़ना पड़ेगा। केवल शब्द गुरु रहेगा, जो वास्तव में तुम्हारे दमाग़ के सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रमाणुओं से उत्पन्न होता है। जब सुरत वहां जायेगी एक ऐसी अवस्था छा जायेगी जो टिकाओ की अवस्था कही जा सकती है। इस टिकाओ में अपना ही मज़ा, आनन्द, मस्ती और खुशी है। यहां सूक्ष्म पदार्थ का अभाव हो जाता है और सुरत अपनी चेतनता में आप कायम हो जाती है।

प्र०- मगर सत्‌लोक का दृश्य बहुत अद्‌भुत वर्णन किया गया है।

उ०- हां यह ठीक है। वहां रूहें अपनी अपनी रोशनी में खेलती हैं। अनुमान के ख्याल में डूबने से

यह तमाम चित्र इन्सान के अनुभव में आता है। यह दृश्य ख़्याली या अन्तर की आंखों से नहीं देखा जाता बल्कि अनुभव अर्थात अन्तर की चेतनता की दृष्टि से देखा जाता है। जिन लोगों ने अभ्यास किया है, मैं उनसे पूछता हूं कि जब वह अपने आप को इस शब्द में लय कर देते हैं, तो वहां सिवाये उनके अपने आप के और क्या रहता है? वहां उनकी सुरत अपने ही आप में आनन्द, मज़ा और मस्ती लेती है। अब रहा बाहरी सत्लोक। यह इस दुनियां के ऊपर एक लोक है, जिसमें कारण सृष्टि बसती है। इस के अनुभव में लय हो जाने से वहां आनन्द के सब दृश्य नज़र आते हैं।

प्र०- क्या वह इतनी अधिक रोशनी होती है, जिसकी उपमा करोड़ों सूरजों की रोशनी से दी गई है।

उ०- हां, मगर वह रोशनी इस तरह देखने में नहीं आती जिस तरह तुम स्वप्न की अवस्था में सूरज अग्नि आदि को देखते हो बल्कि केवल अनुभव में आती है। ऐ फकीरों की मत को या राधा

स्वामीमत की निन्दा करने वालो ! मेरी बातों को सुनो । हस्ती ज्यों ज्यों सूक्ष्म होती जाती है, त्यों त्यों वह अधिक रोशन होती चली जाती है । तुम थोड़ा बिचार के रूप से ही अनुमान करो । जब इस दुनियां का सूरज इतना रोशन और बड़ा है तो वह सूरज, जो सूक्ष्म तत्वों के लोकों से भी ऊंचा है, कितना बड़ा और प्रकाश वान होगा । पहले अपने ख्याल में अनुभव करो, फिर कुछ कहना । खेद है ! मन चंचल है, ठहराओ को प्राप्त नहीं होता । सुरत निरत नहीं होती । फिर कोई क्या कहे और क्या न कहे ।

प्र०- बुरा न मानना ! सब सत्संगी अभ्यास करते हैं मगर यह हालत नहीं खुलती । वहां कैसे पहुंचा जाये ?

उ०- यह हालत खुलती है मगर ग़लती से यह समझते हैं कि इन आंखों से वह दृश्य दिखाई दे । यद्यपि वह केवल अनुभव की आंखों से देखे जा सकते हैं ।

कैसे कहूं किस से कहूं कोई चित्त थिर पुरुष नहीं मिलता।
तन थिर मन थिर सुरत निरत थिर बिन भेद नहीं खुलता।
अनुभव के लिये यह जरूरी है कि तन मन सुरत में हो
थिरताई।

देता हूं सदा ज़ोर से बिन यकसूई यह भेद नहीं मिलता।
न कहो पथाईयो हरगिज़ कि यह गप हांकी है किसी जनूनी ने
यह राज़ अमोलक खोल दिया है जो बिन यकसूई के नहीं
मिलता॥

इश्क ही चीज़ इक ऐसी है जो सार भेद समझाती है।
सोहबते मुरशिद के बिना इस इश्क का भेद भी जहां में नहीं
मिलता॥

इश्क बाहर है किया और शकल का तसव्वर अन्दर में बांधा
इस सुमिरन ध्यान के करने से भी हरगिज़ यह भेद नहीं
खुलता॥

खुद को खुद में कर दो फना या शब्द की डोर में जाओ समा
फिर बात करो आकर मुझसे गर राज़े हकीकत नहीं
मिलता॥

अपने जीवन का तजरबा है जो कह रहा हूं खोलकर भाई।
बिन अन्तर का शब्द खुले हरगिज़ यह हाले हकीकत नहीं
खुलता॥

गो यह भी नहीं मंज़िले मकसूद में कहता हूं सच्ची बातें।
बिन मुरशिद कामल के हरगिज़ आखरी मंज़िल का किनारा
नहीं मिलता॥

क्षमा करना ! आनन्द और मस्ती के जज़्बा में आकर, यह निज अनुभव अपने आप अन्तर से निकले हुए शब्दों में प्रकट कर दिया। मैं कवि नहीं वरना कविता के रूप में स्पष्टतया प्रकट करता। फिर भी जो अभ्यासी हैं, समझ जायेंगे।

प्र०- न शब्द खुलता और न साफ होता है इसका क्या कारण है।

उ०- सांसारिक इच्छायें और धार्मिक पक्षपात के कारण रुकावट है। और सुनो ! जो शब्द ज़ोर स प्रकट किया जाता है, वो काल का शब्द है। और जो शब्द सूक्ष्म तत्वों की धाराओं से उत्पन्न होता है, उससे काम न बनेगा अर्थात सुरत अपने आप में न ठहर सकेगी। इसके विपरीत जो शब्द सहज स्वभाव बिना यत्न और परिश्रम अपने आप पैदा होता है, वो असली और सार शब्द है, जिसे मानवीय सुरत इच्छाओं के जाल में फंसे रहने के कारण नहीं सुन सकती। इसलिये पहले सूक्षम पदार्थ को एकत्र करके महासुन्न तक आओ मगर बिना प्रेम और योग के सफलता न होगी। इसके बाद कुछ दिनों

अनुभव का आनन्द लो और इसे भोगने के बाद इसे भी छोड़कर फिर शब्द में लगो ।

सहजे ही धुन होत है, हरदम घटके मांह,
सुरत शब्द मेला भया मुख की हाजत नांह ।
(परमसंत कबीर साहिब)

नोटः-मैंने जानबूझ कर उन युक्तियों का उल्लेख नहीं किया, जिनसे शब्द आदि की आवश्यकता अनुभव कराई जाती है । क्योंकि ऐसा उल्लेख सत्संगों में साधारणतया होता रहता है । लाखों सत्संगी मौजूद हैं, जो शब्द का अभ्यास पूरा न होने पर भी शब्द के महत्व को मानते हैं । हज़ूर दाता दयाल महर्षि जी ने सारी आयु इसी की शिक्षा दी । यदि आवश्यकता हो तो इनकी पूस्तकें पढ़ो ।

प्र०- सतलोक में सोलह सुत पैदा हुए । इसका क्या अभिप्राय है ?

उ०- सतलोक में जब सुरत अर्थात हमारी तवज्जह शब्द में लग कर अपने आप ठहर जाती है, तो आनन्द का अनुभव करती है लेकिन यह भी मिश्रित हालत है । और सोलह सुत अर्थात् पांच कर्म इन्द्रियां, पांच ज्ञान इन्द्रियां, मन के चार

चतुष्टय, तन और आत्मा हैं, जो कारण रूप से सुरत में विद्यमान हैं, अर्थात् इन सोलह कलाओं से उत्पन्न होने वाले वोधभानों की मिश्रित अवस्था का नाम सुरत है। यही सुरत जब प्रकट रूप में आती है, तो इन सोलह शक्तियों को अपने अन्तर से प्रकट होने का अवसर देकर आप ही इनके चक्कर में फंस जाती है। फिर आप ही घबरा कर इनसे निकलने के यत्न के सिलसिले में समाहित होती है और अपने आप में ठहर जाती है। यह अवस्था सतलोक की है। जैसे तुम्हारे दिमाग़ में सुरत आधार है, इसी तरह ब्रह्मान्ड में भी एक लोक है, जिस से किरणें निकल निकल कर इस संसार को रच लेती हैं और फिर अपने आप उसी में लय हो जाती हैं। तुम केवल अपनी निरख परख करो! बाहरी जगत का अनुभव तुम्हे अपने आप हो जायेगा। अधिक क्या कहूं! अनुभवी पुरुष ही इस हिदायतनामा को सच्चा समझेंगे, इस के विपरीत दूसरों के लिये यह मजज़ूब अथवा असावधान व्यक्ति की एक बड़

है ! प्रत्येक व्यक्ति इस अवस्था का अनुभव कर सकता है, यदि वो इच्छाओं के जाल से मुक्त हो । सुनो ! जब तक इच्छायें प्रवल हैं, यह अवस्था प्राप्त न होगी बल्कि इच्छा रहित होने से ही असली अनुभव होगा । यह बिल्कुल ठीक और सच्ची बात है, जिस में लेशमात्र भी झूठ और कपट सम्मिलित नहीं ।

प्र०- कुछ और कहो ।

उ०- मैं जिस अवस्था का वर्णन कर रहा हूं, वहां इच्छा का नाम भी नहीं । बिना इच्छा के क्या कहूं ! ज़बान बन्द है और इच्छा रहित अवस्था छाई हुई है ।

प्र०- सतपुरुष के दर्शन किस शकल में होते हैं ।

उ०- स्वामी जी की वाणी का ध्यान पूर्वक अध्ययन करो । वहां साफ लिखा है कि वहां सतपुरुष की नूर की आंखें हैं. नूर ही के रोम हैं आदि आदि । स्पष्ट है कि वहां बिना नूर और शब्द के दूसरी कोई चीज़ नहीं । सत्संग व्यास के अनुयाईयों में संत बाबा मघर सिंह हो गुज़रे हैं । एक बार उन्होंने लगातार छः महोने तक घोर तप किया और

अपना निज अनुभव अपने सत्संगी भाईयों को प्रकट करते हुए बताया कि उन्होने वहां नूर और शब्द के सिवाये कुछ नहीं देखा । क्योंकि सत्संगी भाईयों को आरम्भ में मानव रूप का विचार दिया जाता है। इसलिये वहां रोशनी मानव रूप में नज़र आती है। मेरा अपना अनुभव भी यही है कि वहां नूर और शब्द के अतिरिक्त इतनी मस्ती और आनन्द है कि जिस को व्यक्त करना मेरे लिये बहुत कठिन है।

मस्ती में मस्ती मस्ती में मस्ती की मस्ती है।
मस्नी की है शराब जो मैंहगी न सस्ती है।
मस्ती के मैकदा की ईमारत वहां है खूब।
दिवारोदर नहीं है जहां बलन्दी न पस्ती है।
तफ़र्का का नाम नहीं वहां न गुरबत का है निशान।
मस्ती है बस मस्ती है इक मस्ती की बस्ती है।

अब आगे चलो :-जब सुरत अर्थात तवज्जह सूक्षम पदार्थ को छोड़ कर अपने आप में ठहर जाती है और आप ही अपना आनन्द लेती है, तो शरीर के कायम रहने के कारण उत्थान के समय फिर नीचे आती है और इस संसार और इसके कारोबार को

देखती है और सोचती है कि आखरी मंज़िल क्या है? यह ख्याल परम पिता पवित्र पुनीत विभूति राय बहादुर सालिग राम साहिब के मन में पैदा हुआ। वो पवित्र विभूति सच्चाई की तलाश में अनथक थी। कोई व्यक्ति ऐसा नज़र नहीं आता जिसने सच्चाई को उनकी तरह तलाश किया हो। वो अपनी सुरत को ऐसी हालत में ले जाना चाहते थे, जहां विकार न हो! इसलिए वो हज़ूर स्वामी जी महाराज के आदेशानुसार अपने असली स्रोत की ओर अध्यात्मिक रूप में खिचे। जब खिचे, तो सुरत. निरत होने लगी और सुरत अपने आप को भूलने लगी। तब उन्होंने एक ऐसी अवस्था का अनुमव किया।

जहां :-

न रंग रूप है न ज़हूर है न स्वरूप है।
न रोशनी है न हिस कोई, वो अलख अगम अनूप है।
न कोई हस्ती न मस्ती न एहसास न हो कोई वजूद।
क्या कहे कोई कि वो कैसा अदभुत स्वरूप है।

यह अनामी पद है! सुरत या तवज्जह के अपने आप के अनुभव का नाम सत्तलोक है और उसे खो

देने का नाम अनामी पद है। मगर शरीर के होते हुए फिर वहां उत्थान हुआ। उस पवित्र विभूति ने देखा कि शरीर के रहते हुये किसी इन्सान की सुरत सदा एक अवस्था में नहीं रह सकती, इसलिए उन्होंने अपना इष्ट या ध्येय अनामीधाम भी न रखा और सच्ची बात भी यही है। ऐ पढ़ने वालो! क्या तुम एक अवस्था में रह सकते हो? ऐ सन्तो! योगियो! ध्यानियो! क्या तुम ऐसा कर सकते हो? ऐ सतपुरुषो! बतलाओ, क्या तुम हर समय बोधभानों से बचकर रह सकते हो? मेरा अनुभव है कि हरगिज़ नहीं। मैं सत्य का जिज्ञासु था। चाह न मिटी और न ही शान्ति प्राप्त हुई।

प्र०- फिर शान्ति कहां?

उ०- राधास्वामी धाम में?

प्र०- राधास्वामी धाम क्या है,

उ०- तुम निज रूप अथवा ज़ात हो। अपने रूप के साथ सदैव जुड़ कर रहो। राधास्वामी की युगलमूर्ति कायम रहे। जहां जहां सुरत जाये, उस के साथ उस का रूप अर्थात विचार शामिल रहे चाहे अपनी ओर खिचा रहे।

खिच रहूं मेरे प्यारे राधास्वामी ।

(राधास्वामी दयाल)

शान्ति कहां में ? "समता में, सहज वृत्ति में, सुरत और शब्द अर्थात राधास्वामी के मेल में, अपने ख्याल के अपने आपे में गुम हो रहने में, शब्द नहीं मिलते जो वर्णन करूं । इसी सहज वृत्ति का नाम सहज समाधि है, यही राधास्वामी धाम है । मैं खुली आंखों से देख रहा हूं कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर में यही मेल हर समय कायम है मगर भ्रम, अज्ञान, अनसमझी और सुरत के बाहरमुखी होने के कारण प्राप्त हुई वस्तु को अप्राप्त समझा जा रहा है ।

जर्रा जर्रा मैं निहां मैंने राधास्वामी देखा ।
हर जगह और हर मकां में मैंने राधास्वामी देखा ।
कुल जहां में ज़ात और सिफ़ात का है हर दम ज़हूर ।
इस जहाँ की रूहे रवाँ मैंने राधास्वामी देखा ।

बस और क्या कहूं । ऐ सुख शान्ति और नित्यानन्द के जिज्ञासुओ ! किसी पूर्ण गुरु का दरवाज़ा खठखटाओ, उनकी बाणी को पकड़ो, सत्संग करो, रहस्य को समझो, भ्रम और अज्ञान से निकलकर अपने जीवन को खुशी, आनंद और प्रेम से गुज़ारो ।

प्र०- हिदायतनामा में लिखा है कि सतलोक और ऊपर के लोकों में संदल आदि की खुशबू आती है और महान आनंद है। इसमें कहां तक सच्चाई है।

उ०- मैंने इस समय तक ऐसी कोई बात नहीं लिखी, जिसका मैंने आप अनुभव न किया हो। जो कुछ मेरा निज अनुभव है, ब्यान कर रहा हूं। सुनो, मैं खबत (धुन) में आकर दमाग़ के ऊपर के भाग में सहारा लिए बिना अभ्यास किया करता था अर्थात उस हालत में सुमिरन, ध्यान, शब्द, अभिप्राय यह है कि किसी का भी सहारा न लेता था। दो तीन बार तो ऐसी हालत हुई कि मेरा दमाग़ और सिर सारे का सारा ठण्डा पड़ गया। जब अभ्यास से उठा तो मुझे दमाग़ में बर्फ की सी सर्दी महसूस हुई। बर्फ की सर्दी में तो तीक्षण पना होता है मगर यहां हालत आनंददायक थी और मुझे अपने अंतर से एक विशेष प्रकार की सुगंध आती महसूस हो रही थी। तीन दिन तक यह हालत रही, फिर समाप्त हो गई। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं बतला

सकता । अब मैं विज्ञान के आधार पर इस विषय में अपना विचार प्रकट करता हूं, जिससे मुझे शान्ति मिली। सुनो ! मस्तिष्क के अंतर सुरत क्या है ? केवल सत्ता (हस्ती) जो एक तत्व है। इसमें सत्ता होने के कारण स्वभाविक ही गति होती है और गति ही शब्द का स्रोत है, जहां सुरत एक प्रकार की बिजली है। जब यह बिना किसी चीज़ का सहारा लिये अपने आप में लीन होती है, तो मस्तिष्क की गति बन्द होकर सिर ठण्डा हो जाता हैं। पहले अभ्यास की हालत में सुरत में एनर्जी थी, जोश था। जिससे दमाग़ में गर्मी और सिर में भारीपन था । इस लिए सुरत अपने अन्तर से धार निकालकर उस के साथ खेलती है। इस लिए हरकत की गति अधिक थी । मगर जिस समय इसने सहारा छोड़ दिया और उस अर्थात बिना इष्ट के अभ्यास किया तो गति कम होने के कारण से ठंडक पैदा हो गई, मगर यह हालत ठीक नहीं बल्कि हानिकारक है। इसलिए हुकम है किसी पूर्ण गुरु के मार्ग दर्शन के बिना अभ्यास न

किया जाये अन्यथा खतरे सामने आयेंगे। इसके अतिरिक्त जो खुशी और आनन्द की हालतों का रोचक रूप में और अधिक ब्यान किया गया है, वह केवल खूशी और आनन्द को प्रकट करते के लिए है। सुनो :-

गुरु बिन घट में राह न चलना।
डर और विघन अनेकन मिलना॥
(राय बहादुर सालिगराम साहिब)

पूर्ण गुरु के मार्ग दर्शन के बिना अभ्यास से इन्सान का दमाग़ खराब हो जाने का डर रहता है। कई सत्संगी दीवाने और मजज़ूब हो जाते हैं। लोग उन्हें अच्छा समझते हैं मगर यह ग़लती है। अभ्यास साधन है शान्ति और आनन्द के प्राप्त करने का, यह ध्येय पद नहीं है।

प्र०- लक्ष्य स्थान क्या है ?

उ०- राधास्वामी ! जैसा कि मैं पहले वर्णन कर चुका हूं। जब तक जीवन है, उसके साथ प्राकट्य रहेगा। उसे साथ रखते हुए जहां जहां सुरत जाये वहां वहां ठहराओ से काम लो। मेरी बात पर विश्वास न हो, तो कबीर साहिब की बानी सुनो !

साधो सहज समाधि भली।

गुरु प्रताप जा दिन से जागी. दिन दिन अधिक चली।
जहं जहं डोलौं सो परिकरमा. जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत. पूजौं और न देवा।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खांव पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं. भाव मिटावौं दूजा।
अंख न मूंदौं कान न रूधौं. तनिक कष्ट नहि धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हंसि हंसि, सुन्दर रूप निहारौं।
शब्द निरतर से मन लागा मालिन वासना त्यगी।
ऊठत बैठत कबहुं न छटै. ऐसी तारी लागी।
कहें कबीर यह उनमुनि रहनी. सो परगट कर गाई।
दुख सुख से कोई मेरे परम पद. तेहि पद रहा समाई॥

हजूर दाता दयाल जी अपने आखरी ख्यालात को पत्रों द्वारा लिख कर बाबू मोहन लाल साहिब नैयर को भेजा करते थे, जो "नैयरेआज़म" पुस्तक रूप में छप चुके हैं। उन्हे पड़ो, तुम्हें मालूम हो जायगा कि असलीयत क्या है! गुण और गुणी अनादि हैं। गुणी (ज़ात) से गुण (सिफ़ात) निकलते रहते हैं। जहां सत्ता (हस्ती) है, वहां सत्ता की धार भी रहेगी।

प्र०- अच्छा, हिदायतनामा में लिखा है कि सार तत्व किसी को ज्ञात नहीं हुआ। क्या यह सत्य है।

उ०- हां मगर लोग, शब्दों के भाव को ग्रहण नहीं

करते। सुनो ! संसार में जितने धर्म हैं, वे सब इष्ट बनाते हैं और उसकी पूजा की शिक्षा देते हैं। किसी ने राम को किसी ने कृष्ण को और किसी ने किसी को अपना इष्ट बनाया। यह इष्ट वास्तव में इन्सान की कल्पना है और वो उसी के पीछे दौड़ता है। इसलिये राधास्वामी दयाल फरमाते हैं कि यह सब भ्रमग्रस्त अपने ही मन की पूजा आदि करते हैं। मैं भी यही कहता हूं कि वास्तव में यह आदर्शपना भी भ्रम है। इस के अतिरिक्त असलीयत यह है कि अपने रूप को आप पहचान कर चुप रह, जज़्बे में आये बिना जीवन व्यतीत करो ! यह कर्म धर्म, ज्ञान ध्यान, योग पूजा आदि सब के सब इन्सान का अपना ही भ्रम व ख़्याल है और हर समय इसी में ग्रस्त रहता है। अधिक क्या लिखूं।

आप आप को आप पहिचानो।
कहा और का नेक न मानो।

(राधास्वामी दयाल)

प्र०- क्या राधास्वामीमत में गुरु का इष्ट नहीं !

उ०- है, मगर पूरे गुरु का। जिसके सत्संग से धीरे

धीरे यह आदर्शपना छूट जाता है और इन्सान असलीयत को प्राप्त करके शान्त हो जाता है। जब यह हालत आ जाती है. तब न गुरु का ख्याल शेष रहता है और न चेले का और न शब्द का। इसके अतिरिक्त न अभ्यास की आवश्यकता रहती है न कर्म की, बल्कि सच्चा अचिन्तपना और शोक रहित अवस्था आकर बच्चों जैसा सादा, साधारण और स्वभाविक जीवन हो जाता है। इसी का नाम परमसंत गति है। ऐसा व्यक्ति न गुरु बनता है न चेला, न मालिक अर्थात स्वामी और न सेवक, वो क्या होता है ? कोई ब्यान नहीं कर सकता, इसलिये संत की महिमा है।

प्र०- तो यह गुरुवाद भी व्यर्थ है।

उ०- व्यर्थ क्यों है ? इसके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। चाहे कोई लाख यत्न करे, बिना पूरे गुरु के वो सत्य का रहस्य प्राप्त नहीं कर सकता।

बिन गुरु दाते कोई न पावे लख कोई जे करम कमावे।
(श्री गुरु नानक साहिब)

ऐ भोले भाले लोगो ! ग़ुरुमत का खण्डन करने वालो ! तुम अपने ख्याल से सच्चे हो मगर याद रखो !

यह मन पता नहीं तुमको कहा २ भटकाता रहेगा । इसलिये निज अनुभव के आधार पर कहता हूं कि बिना पूर्ण गुरु के कभी शान्ति प्राप्त न कर सकोगे ।

पूरा गुरु क्या काम करता है ? वह इन्सान के भ्रम नाश करके उसे ऐसी जगह पहुंचा देता है, जहां न गुरु है न चेला, न खुदा न परमेश्वर, वह कौन सी जगह है ? इन्सान अनुभव होने पर आप ही समझेगा, किसी के कहने से यह बात समझ में नहीं आ सकती, हां, बचनों के संकेत द्वारा कोई २ कुछ समझ जाता है मगर वह संकेत भी बिना निज अनुभव के समझ में नहीं आता, थोड़ा २ अभ्यास करो, सत्संग करो, संकेत ग्रहण करो और बस ।

प्र०- हम पिछले गुरुओं की टेक रखते हैं ? इस में क्या हानी है ।

उ०- जब तक पिछले गुरुओं की टेक है, मन मते में हो, क्योंकि वह टेक तुम्हारे अपने मन की है । राधास्बामीमत उपदेश करता है कि :-

पिछलों की तज टेक तेरे भले की कहूं ।

अगर नुकता अर्थात सार बात समझ में नहीं आई, तो कुछ दिन सत्संग करो। इष्ट बदलने की आवश्यकता नहीं क्योंकि तुम्हारी कल्पना का रूप तुम्हारा अपना ही तो है, फिर जो ध्यान करते हो, वह भी तुम्हारा अपना ही ख्याल है, बाहर का केवल सहारा है। भाई! असली चीज़ सत्संग है। शेष तुम्हारे अन्तर तुम्हारी अपनी श्रद्धा और विश्वास काम करेगा।

वास्तव में मन गुरू है और मन ही चेला। इसके बाद तुम्हारे अन्तर का शब्द असली गुरु है। मगर यह सार भेद बाहरी गुरु के अधीन है। जो स्वतन्त्र पुरुष है, वह तुम्हें तुम्हारे ख्याल के अनसार उपदेश करता हुआ सत्य का रहस्य समझायेगा। याद रखो बिना बाहरी पूरे गुरु के यह रहस्य न खुलेगा। सत्संग करो और सत्संग करना यह है कि सार बचन (बाणी के सारांश को समझो)।

प्र०- यह रहस्य तो सब जानते हैं मगर मन की लालसा नहीं जाती। शान्ति नहीं मिलती।

उ०- इसका उत्तर प्रत्येक व्यक्ति की प्रस्थितियों के अनुसार अलग अलग दिया जा सकता है। एक

उत्तर मन को शान्ति के लिये प्रयाप्त न होगा। मेरी राय यह है कि अपने अपने सतगुरू के पास जाओ। वह भेद बताऐंगे। मैं सच्च कह रहा हूं। जो उपदेश आज दिया जाता है, वह एक वर्ष के बाद ठीक न रहेगा। पूरा गुरु सदा स्थितियों और प्रस्थितियों और इन्सान की प्रकृति के अनुसार उपदेश करता है।

सतसंगः- यह दो प्रकार का होता है। एक साधारण, दूसरा बिशेष। जिन सत्संगों में साधारणतया बातचीत की जाती है, वह साधारण सत्संग होता है। दूसरे सत्संग में व्यक्तिगत रूप में बात चीत होती है, जो विशेषकर उसी व्यक्ति के लिए होती है। इसका नाम विशेष सत्संग है। यह दोनों ही सत्गुरु की छत्रछाया में होते हैं। जाओ उनकी शरण लो।

प्र०- सत्गुरु एक होता है या अनेक ?

उ०- सत्गुरू उस पवित्र विभूति का नाम है, जो इन्सान के मन से गुरुपने का भ्रम दूर कर दे। सतगुरु कितने हैं अब तुम आप पता कर लो।

प्र० - आखिर आप की दृष्टि में कोई होगा ?

उ०- मुझे पता नहीं। क्योंकि मैं न कहीं गया न

आया । केवल दाता दयाल जी महाराज की पवित्र विभूति से मौज ने सम्बन्ध पैदा किया था वहीं आयु गुज़र गई । हां राधास्वामीमत को समझने की धुन सिर में समाई हुई थी । यह हिदायतनामा और सार बचन मेरे भाग्य में आया । उनके गुप्त होने के बाद मैं उस आज्ञा को पालन करने में लगा हुआ हूं जो वह मुझे दे गये थे कि जब तक जीवन है सच्चाई को प्रकट करते रहना ।

मैं ब्यास गया, वहां परम पिता परमसंत बाबा सावन सिंह जी महाराज के दर्शन किये । उनके दिये गये फूलों की धारों और उनकी संगत के प्रभाव से यह कह सकता हूं कि वह संत हैं और जीवों को सम्भाल रहे हैं । यद्यपि मेरे जैसे मनमत और भ्रमपूर्ण बुद्धि वालों के लिए वहां के सत्संग में विकास का सामान कम है फिर भी वह मौज से है ।

प्र०- क्या आप के ख्याल में और भी संत हैं ?

उ०- मित्र ! मैंने किसी और के दर्शन नहीं किये । मुझे कोई अधिकार नहीं कि बिना सोचे समझे कोई शब्द कहूं । होंगे, हो सकता है बहुत से हों

और सम्भव है, कोई न हो। यदि जीवन शेष है, तो विचार है कि राधास्वामीमत के सभी सत्संगों में जाकर उन पवित्र विभूतियों के दर्शन करूं, जो मेरे जेसे मूर्खों और अज्ञानियों को ढारस और सहारा देकर असलियत की ओर ले जा रहे हैं। मगर सच्चाई यह है कि मेरी दृष्टि में सारा संसार संत है।

प्र०- क्या तुम गुरुमुख नहीं हो ?

उ०- नहीं मित्रो ! अगर मैं गुरु की बात को समझ जाता, तो पैंतीस वर्ष संघर्ष न करता। मैं गुरु धारण किये हुए भी निगुरा था। सत्‌गुरु ने नाम दिया था मगर मैं उसे न समझा। चौरासी लाख योनियों में भ्रमता और भटकता रहा। मेरे जैसे पतित और मलीन व्यक्तियों के लिए सतपुरुष राधास्वामी दयाल प्रकट हुये। उन्होंने मुझे नाम दिया, जो बहुत आसान था अर्थात काम के समय उसे पूरे ध्यान से करना और अगर काम न हो, तो सुमिरन ध्यान करना या अपनी सुरत को अन्तर के शब्द में लय करना। तत्पश्चात बेख़्याली की हालत में चले जाना।

मगर मुझे खुदा की तलाश, उसे मिलने और अन्य भ्रमों ने घेर रखा था। मेरे जैसे पतित आदमियों के लिये सत्य स्वरूप ने मानव देह धारण करके नाम की विधि बताई। चलो अच्छा हुआ, जो भटका खाया। सुनो एक शब्द है, जो मैं कभी-कभी प्रेम से गाया करता था।

मैं पतित ठहरा तभी, तू भी पतित पावन बना।
डूबा दुःख सागर में मैं, तब तू तरन तारन बना।
जो न होता जग में रावण, कैसे आते रामचन्द।
कंस ने प्रगट किया, मथुरा में कृष्ण आंनन्दकन्द
जो सुखी हैं उनको तेरे, नाम की चाहत नहीं।
जो भले हैं उनको तेरे, काम की हाजत नहीं।
पाप जब मैंने किया तब, तू हुआ प्रगट यहां।
मैं न करता पाप तुझको, जानता कोई कहां।

प्र०- चौरासी लक्ष्य योनियों से क्या अभिप्राय है ?

उ०- योनियों के विषय में धार्मिक संसार के लोगों का जो ख्याल है मुझे उस पर टीका टिपणी करने की आवश्यकता नहीं। मैंने अपने अनुभव के आधार पर योनियों का जो अर्थ समझा है उसे प्रगट करता हूं। योनियों से अभिप्राय

मानव के शारीरिक और मानसिक बोधभान हैं। जिन में छः पिण्ड के और छः मन के चक्र हैं मिलकर बारह होते हैं। क्योंकि प्रत्येक चक्र में काम क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, मन और बुद्धि के सात प्रकार के बोधभान हैं इसलिये कुल 12×7=84 हुये। मेरी सुरत इन चौरासी लक्ष्य योनियों में घूमती हुई दुःख सुख, हर्ष शोक, चिन्ता अचिन्ता और उतार चढ़ाव के चक्र में आती रही। मैं बाहर में नाम लेवा ज़रूर था, जप भी करता था मगर सब व्यर्थ अर्थात न जपने के बराबर। मेरी समझ में चौरासी लक्ष्य योनि का यह मतलब है। लक्ष्य हालत को कहते हैं। इस तरह मेरी सुरत अनेक प्रकार के बोध भानों में घूमती रहती थी। अब भी उसका थोड़ा सा प्रभाव बाकी है। जो यह लिखने आदि का काम कराता है।

प्र०- आपने योनि की जो व्याख्या की है, वह आपके दृष्टिकोण से ठीक ज्ञात होती है, लेकिन धार्मिक संसार के संस्कार मुझे और अधिक विस्तारपूर्वक जानने के लिए विवश कर रहे हैं। मैं पूछना

चाहता हूं कि वास्तव में आवागवन या पुर्नजन्म का सिद्धान्त ठीक है या नहीं ? अर्थात यह केवल एक ख्याल है, जो किसी कारणवश दिया गया है या सचमुच मानवीय सुरत को अनेक शरीर धारण करने पड़ते हैं।

उ०- इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले ज़रूरी होगा कि तुम अपने आप को मेरे अर्पण कर दो। ताकि मैं उसका उत्तर तुम्हारी समझ में बैठा सकूं। साधारण रूप में अगर मैंने इसका उत्तर दे भी दिया तो तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। कहो, तैयार हो ?

प्र०- हां तैयार हूं।

उ०- अच्छा, तो तुम्हारी तब्वजह मेरे कलाम के साथ रहे, सुनो ! शिक्षा क्षेत्र में आज तक जितनी भो विद्यायों का अविष्कार हुआ है, उन में सब से उत्तम विद्या निज रूप की विद्या है, जिसके जान लेने से फिर किसी और चीज के जानने की आवश्यकता नहीं रहती। निज रूप का ज्ञान क्या है ? "यह कि हम कौन हैं !" बस यही एक बात निज ज्ञान की जान है और जब

तक इस बात का पता नहीं लगता। इन्सान को शान्ति प्राप्त होनी कठिन है। जीवन भर मन के अन्तर प्रश्नोत्तर का सिलसिला बना रहता है और खैंचातानी की हालत बनी रहती है।

आप आप को आप पहचानो।
कहा और नेक का मानो।

(राधास्वामी दयाल)

तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं यह बताना चाहता हूं कि तुम कौन हो ? तुम इन्सान हो, वजूद हो, *Life* हो जिन्दगी हो ! जिन्दगी अर्थात तुम में (Feelings) चेतनतायें है, जिन्दगी क्या चीज़ है ? इसे बताया नहीं जा सकता मगर इसका अनुभव हर जीवित व्यक्ति आप करता है ! कहो ठीक है या ग़लत ?

क्योंकि तुम जीवन के बोधभान रखते हो, उन का अनुभव करते हो और ज्ञान रखते हो, इसीलिए तुम उस व्यक्ति की बातचीत के भाव को आसानी से समझ लेते हो, जो उन वोंधभानों के अनुभव तुम्हारे सामने ब्यान करता हूं, लेकिन जिन वोधभानों का तुम्हें ज्ञान और तजरबा नहीं उन के वारे तुम

दूसरे की बात नहीं समझ सकते। इसीलिये सन्तों ने अभ्यास पर ज़ोर दिया है। ताकि इन्सान शारीरिक मानसिक और आत्मिक, अर्थात स्थूल सूक्ष्म और कारण वोधभानों का पूरा तजरबा प्राप्त कर ले या फकीरों और सन्तों के अनुभव से निर्धारित सोपानों को तय कर ले ताकि वो सार बात या सत्य के रहस्य को स्वीकार करने के योग्य हो जाए। वे सोपानें क्या हैं ? वे अपूर्व मानव स्वरूप की जीवन स्थितियां हैं। इसलिये मेरे उद्देश्य को केवल वही व्यक्ति समझेगा जिसने आप जीवन का अनुभव प्राप्त किया हो। अब तुम सोचो कि तुम्हारे भानबोध क्या हैं। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भानवोध ! जो चीज़ इनका अनुभव करती है वो निज रूप (ज़ात) है। उसका न नाम है, न रंग और न रूप, न उसका कोई पिता है, न माता न भाई बल्कि वो अपना आप है। तुम कह सकते हो कि इसका सबूत क्या है ?

मैं उत्तर देता हूं कि जब तुम अभ्याम करते हो तो तमाम खेल, रोशनियां, ख्याल और दृश्य आदि तुम से अलग चीज़ नज़र आते हैं और तुम साक्षी रूप में उनका अनुभव प्राप्त करते हो। यह सब

अनुभव प्रकृति के कारण हैं और शारीरिक और मानसिक प्रकृति के परिवर्तन के साथ बदलते भी रहते हैं। जैसे मैं बता चुका हूं कि भिन्न भिन्न अवस्थाओं में अभ्यासी के अनुभव भिन्न भिन्न होते हैं। वास्तव में तुम न शरीर हो न मन और न रूप बल्कि ज़ात हो, अलख हो, अगम हो, अनामी हो, अरूप हो। क्या हो ? कैसे कहूं ! न शब्द मिलते हैं, न बाणी सहायता करती है और न उस अवस्था को प्रकट करने की कोई और विधि है। अगर कुछ है, तो यह कि तुम आप अपने आप को इन बोधभानों से अलग करके देख लो तब तुम्हें आप अनुभव हो जायेगा कि तुम कौन हो ! अब आगे चलो।

फकीरों की जितनी अवस्थायें सतलोक से लेकर स्थूल पदार्थ प्रयन्त हैं, सब खेल काल और माया के हैं या अन्य शब्दों में प्राकृतिक चीज़ें हैं, जो कल्पित नहीं बल्कि सत्य हैं।

इन्सान का स्वरूप या हमारा स्वरूप अपने प्राकृतिक कर्म के प्रभावाधीन हुई गति के कारण गुणों की ओर ध्यान देता है और उस के खेल में रुची रखने के कारण फंस जाता है अर्थात अपने आप

को भूलकर या सुरत के बाहर मुखी, चाहे अन्तर से निकली हुई शकलों को देखने के कारण दुःख सुख, हर्ष, शोक और चिन्ता और अचिन्ता की दशाओं को भान करता है । यही ज़ात का अर्थात स्वरूप का सिफ़ात अर्थात स्वभाव की ओर ध्यान देना है और इस खेल में रुची रखना आवागवन कहलाता है और स्वभाव या गुणों की ओर से स्वरूप का हट जाना मोक्ष है । इसी नियम के आधार पर कहा जाता है कि इन्सान आवागवन में फंस कर अनेक प्रकार की योनियां या शरीर धारण करता है । इस अपने अनुभव के आधार पर यह भी कहने का साहस करता हू कि सूरज, चांद, ब्रह्मा, विष्णु आदि प्राकृतिक शक्तियों में जो स्वरूप का अंश काम करता है, वो भी आवागमन में अर्थात योनि व शरीर धारण किये हुए है ।

प्र०- यह आप क्या कहने लगे ? क्या ब्रह्मा, विष्णु, शिव और अन्य देवता भी आवागमन भोगते हैं ।

उ०- हां, मैं सच्चाई के साथ बातचीत कर रहा हूं । जो वस्तु भी आकृति में है, उसमें भानबोध का आना अनिवार्य है । जब वो बोधभानों का

अनुभव करती है तो उसका आवागमन भी अनिवार्य है। क्योंकि उसमें रहने वाली ज़ात भी तत्वों के कारण उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के बोधभानों का अनुभव करती है। इसलिये संत फ़रमाते हैं कि अकाल के साथ काल और ज़ात के साथ सिफ़ात का होना ज़रूरी और प्राकृतिक है।

प्र०- तो क्या ज़ात (स्वरूप) टुकड़े २ हो सकती है ? वरना भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होना कैसा ?

उ०- हां ! मगर उसका टुकड़े होना ऐसा ही है, जैसे सूरज से किरणों का जुदा होना। किरणों का सम्बन्ध सदा सूरज से बना रहता है और वह अलग भी अपनी हस्ती के खेल दिखाती हैं। इसी प्रकार ज़ात की किरणों या अंशों का सम्बन्ध सदा ज़ात से कायम रहता है। यह ज़ात की अंश जब प्रकृति की ओर झुकती है तो अपने आप को भूल जाने के कारण न केवल प्रकृति के खेल में दुख सुख, शादी ग़मी, फिकर बेफिकरी आदि का अनुभव करती है बल्कि इस चक्र से

निकल भी नहीं सकती । वह इसमें फंसे रहने और अपने आप को प्रकृति की ओर लगाये रखने के कारण आवागवन में रहती है और अपनी इच्छा के अनुसार कभी कोई शरीर, कभी कोई शरीर या आकृति धारण करती रहती है ।

प्र०- तो क्या आवागवन इन्सान या ज़ात की अपनी वासना के अधीन होता है ?

उ०- हां, जहां आसा तहां वासा ।

प्र०- तो इस से सिद्ध हुआ कि आवागवन ज़रूरी है ।

उ०- हां ।

प्र०- इससे बचाओ ?

उ०- निज रूप का ज्ञान या असली जानकारी ! इसके सिवा और कोई इलाज नहीं ।

प्र०- क्या अभ्यास से आवागवन नहीं छूटता ?

उ०- नहीं ! अभ्यास के बाद सत्संग की ज़रूरत होती है————तब हस्ती का ज्ञान पूर्ण होता है । अभ्यास साधन और तरीका है.........और :—

दाता दयाल महर्षि जी महाराज के चोला छोड़ने पर धाम के सतसंगी जनों में से कुछ लोगों ने मुझे

गुरु बनाना चाहा । मैंने सोचा कि गुरुपना भी चौरासी लक्ष्य योनियों में से एक योनि और बन्धन का कारण है । इसलिए मैंने क्षमा चाही । सतगुरु ने चौथे पद की शिक्षा देकर गुरु और सतनाम की वास्तविकता का ज्ञान प्रदान किया ।

तीन छोड़ चौथा पद दीन्हां सत नाम सतगुरु गति षीन्हा ।

(राधास्वामी दयाल)

अब मैं धाम वालों से प्रार्थना करूंगा कि वह किसी ऐसी हस्ती को गुरू बनाऐं जो गुरू बनने के योग्य हो । जिस स्थान पर मेरे दाता दयाल जी ने मुझे पहुंचाया है वहां गुरु और शिष्य दोनों नहीं रहते । जब तक यह शरीर स्थित है, सन्तमत की यथायोग्य सेवा करता रहूंगा और लेखनी द्वारा (रसाला सारी दुनियां और सतसंगत में) भी सेवा करता रहता हूं । अतः इस सम्बन्ध में यह हिदायत नामा की व्याख्या जो मेरे अनुभव में आई है, आपकी भेंट है । पूर्ण विश्वास है कि मेरे जैसे भ्रमी और पतित इन्सान इसे पढ़कर अवश्य लाभान्वित होंगे ।

प्र०- आपकी बातचीत से मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि केवल इन्सान ही एक पूर्ण हस्ती अथवा

सत्ता है मगर वो भ्रम और संशय के कारण अपने बोधभानों में फंसी हुई है। जिससे केवल अभ्यास और पूर्ण गुरु के सतसंग द्वारा छुटकारा पा कर शान्ति प्राप्त होती है। अगर यह ठीक है, तो आप ने जो आरम्भ में लिखा है कि राधास्वामी नाम को समझने से देश में शान्ति आयेगी और लोगों को पेट भर रोटी खाने को मिलेगी आदि आदि, कैसे सम्भव है ?

उ०- सुनो ! जिस समय इन्सान को सार भेद का पता लग जाता है, उसके मन से द्वैतभाव मिटकर धर्म, पन्थ और हिन्दु मुसलमान के भेदभाव दूर हो जाते हैं। जब देश में लाखों की संख्या नाम जपने वालों की है अगर वो सत्य के रहस्य को समझ जायें, तो गुट बन्दियां और धार्मिक झगड़े दूर होने में क्या संशय रहेगा, रहा रोटी का प्रश्न ! हमारे मत में हुक्म है कि स्वार्थी न बनो ! सत्संगी भाईयों की सेवा करो भूखे ! को रोटी और नंगे को कपड़ा दो। हर जगह सत्संग जारी हों और सत्संगों का दान वहीं खर्च हो। हर सत्संगी अपनी जीविका आप पैदा करने का

यत्न करे और दूसरों पर भार सिद्ध न हो। अब तुम अनुमान लगा सकते हो कि रोटी का प्रश्न हल होता है या नहीं। मुश्कल तो यह है कि लोग गुरुवाई की असलीयत को न समझते हुए अपने २ मानसिक, कल्पित अथवा माने हुए गुरु की प्रशंसा करके दूसरों का खण्डन करते हैं, जो एकता को भंग करने का कारण बनता है।

मैंने राधास्वामीमत को मानव मत समझा है और समय आने पर यह सचमुच एक सच्चा मानव-मत सिद्ध होगा। उस समय एक महान हस्ती, सोलह साल की आयु संतगुरु के चोला में आयेगी, जो दरम्याना कद, गंदमी रंग, चेचक के मामूली मामूली दाग़ मुंह पर और स्वदेशी वस्त्र धारण किये होगी। उसके युग में राजा प्रजा, अमीर ग़रीब, छोटा बड़ा, अभिप्राय यह है कि सब एक ही मंच पर आयेंगे, तब लोग कहेंगे कि यह असली फकीरों का मत है। बस लिख दिया, लिखा दिया लिखाने वाले ने। मौज है, सम्भव है कि यह मेरा भ्रम हो।

प्र०- आप ने जो यह ख्याल प्रकट किया है कि एक महान

हस्ती सतगुरु के चोला में प्रकट होकर मानवमत का प्रचार करेगी, क्या इसका कोई प्रमाण दे सकते हो।

उ०- हां! मैं युक्ति से और प्रमाण से सिद्ध करने को तैयार हूं लेकिन तुम में समझने की शक्ति होनी भी ज़रूरी है।

प्र०- क्षमा करना! आप ख्याल करते हैं कि दूसरे आदमी आप की तरह सूक्षम बुद्धि नहीं रखते और उन में समझ बूझ की शक्ति कम है। अगर ऐसा ख्याल है तो यह अनुचित बात है। लोग ख्याल करेंगे कि आप अपने आप को तो अधिक बुद्धिमान समझते हैं और दूसरों को मन्द बुद्धि।

उ०- यह बात नहीं बल्कि प्रकृति के गुप्त रहस्य अभी तक ऐसे हैं, जिन्हें वर्तमान युग के बड़े बड़े बुद्धिमान, राजनीतिक और सामाजिक नेता और धार्मिक संसार के ज्ञानवान समझने के अयोग्य हैं और कुछ बातें ऐसी भी हैं जिन को मालूम करने के लिये मैं आप लम्बे समय से इच्छुक हूं लेकिन मालूम नहीं कर सका। सम्भव

है, तुम कोई विशेष प्रमाण मांगो और मैं न दे सकूं। मैं नीयमुनासार और विस्तारपूर्वक कहूंगा। अच्छा, सुनो।

हिटलर की तमाम कामनायें या इच्छायें खत्म हो गईं, जापान के सारे संकल्प मिट्टी में मिल गये। क्या इन दोनों ने इसो असफलता का मुंह देखने के लिये अपने प्रोग्राम को बनाया था ? नहीं, हर गिज़ नहीं। प्रकृति का खेल निराला है और "खुदा की बातें खुदा ही जाने" वाला ख्याल आम आदमियों का है। कई इन्सान दुनियां की नज़र आने वाली स्थितियों और प्रस्थितियों का ध्यान रखते हुए जिस परिणाम अथवा ख्याल पर पहुंचते हैं, उसे प्रकट करते हुए उस की सच्चाई में विश्वास रखते हैं मगर मैं ऐसा नहीं मानता, अगर मालिक है, तो एक सत्ता अथवा हस्ती है। जिस का काम किसी नियम पर अधारित है और वो नियम ख्याल का है। अधिक उचित शब्दों में यूं कहूंगा कि वो नियम चेतनताओं का है। ख्याल या चेतनतायें विशेष प्रकार की लहरों या किरणों का रूप रखती हैं। जिस व्यक्ति का दमाग़ अथवा मानसिक चेतनता जिस मात्रा में

अधिक सूक्षम अथवा सूक्षम से सूक्षम होती है, उस पर उन तमाम ख्यालों या चेतनताओं का उसी मात्रा में प्रभाव पड़ता है, जिस के कारण वो इन्सान बाहरी स्थितियों और प्रस्थितियों की सहायता लिये बिना अपने विचारों को प्रकट करता है। कई व्यक्तियों में यह शक्ति होती है कि वे अपनी बात या ख्याल को सिद्धान्त रूप में प्रकट कर सकते हैं। मैंने जो अपना ख्याल प्रकट किया था वो इन लहरों और किरणों का प्रभाव था, जो मेरे मस्तिष्क पर पड़ा और मैंने लिख दिया। अब मैं ज़ाहरी स्थितियों और प्रस्थितियों की सहायता से अपने ख्याल की सच्चाई को प्रकट करता हूं, ताकि तुम्हें भी यह विश्वास हो जाये। लेकिन अपना ख्याल प्रकट करने से पहले मैं जानना चाहता हूं कि तुम मेरे ख्याल से सहमत क्यों नहीं हो।

प्र०- इस लिए कि *Dictatorship* एक व्यक्ति के शासन का ज़माना गुज़र गया। वर्तमान समय प्रजा तन्त्र का है। यह असम्भव है कि एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार के विचार धारा वाले लोगों का अकेला ही नेता बन सके ! इस लिए

आपका यह ख्याल भी ग़लत है कि एक हस्ती प्रकट हो कर ऐसा मिशन कायम करेगी, जो सब के लिए समान रूप में लाभदायक होगा।

उ०- बस यही बात है? अच्छा, अब इस का उत्तर सुनो! प्रजा तन्त्र उस समय तक किसी देश, जाति समाज या घर के अन्दर हरगिज़ शान्ति नहीं ला सकता जब तक कि उसके तमाम व्यक्ति या सदस्य सहानुभूति का भाव रखने वाले और त्याग भावना रखने वाले न हों। सोचो! क्या यह ग़लत है? अब अपने ही देश भारत के भावात्मक झुकाओ का अनुमान लगाते हुये और आपसी भेद भाव और झगड़ों को ध्यान में न रखते हुये परिणाम निकालो कि क्या वर्तमान स्थिति से अमन और शान्ति की आशा रखना असम्भव बात नहीं?

प्र०- बात तो ऐसी ही मालूम होती है। अगर किसी देश, समाज या घर के तमाम सदस्य दूसरों की भावनाओं की परवाह न करते हुये अपनी ही इच्छायें पूरी करनी चाहते हों, तो उसका प्रबन्ध नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। जैसा कि

हमारे देश का *Discipline* (नियम का पालन) और *Control* (शासन में रहना) ज़रूरी चीज़ है। मगर प्रश्न यह है कि नियम और शासन भंग करने का इलाज क्या है ?

उ०- आपसी सहानुभूति, स्वार्थ का त्याग, त्यागमय जीवन और दूसरों की खुशी में खुश रहने की आदत। जिस प्रकार मां अपने बच्चे को खुश रखने के लिए हर प्रकार के कष्ट सहन करती है या सुशील स्त्री अपने पति की प्रसन्नता, सेवा के लिए अपने अराम और खुशी को न्योछावर कर देती है! और परिणाम स्वरुप गृहस्थ आश्रम में स्त्री पुरुष दोनों मान प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते हैं। इसी तरह जब तक यह जज़्वा देश और समाज में पैदा न होगा, वर्तमान प्रजातन्त्र का नियम हरगिज़ शान्ति न देगा।

प्र०- कारण।

उ०- इस लिए कि नवयुवक अर्थात उत्तेजित भावनाओं वाले लोग कंट्रोल और डिसिपलिन को छोड़ रहे हैं। जिससे एक हद तक अशान्ति

पैदा हो चुकी है और कुछ आगे होगी। जब लोगों की भावनाओं का बुरा परिणाम सामने आयेगा तो मानवता की भावना अपने आप शान्ति और सुख की इच्छुक होगी। जिस को पूरा करने के लिए प्रकृति किसी ऐसे नवयुवक द्वारा वर्तमान या आने वाली मानव जाति की भावनाओं को नियम और शासन में लाने का प्रबन्ध करेगी, जिसका मैंने उल्लेख किया है "*Where There is demand, There is supply*" अर्थात इच्छा करो मिलेगा। खटखटाओ, खोला जायेगा शरत यह है कि जज़्बा में सच्चाई हो। यह प्रकृति का नियम है। सबूत दे दिया।

'कुनद हम जिन्स रा हम जिन्स परवाज" अर्थात हम जिन्स हम जिन्स के साथ उड़ता है जैसे कबूतर कबूतर के साथ और बाज़ बाज के साथ। वर्तमान नवयुवक या प्रबल भावनायें रखने वाले लोग, ऐसे नययुवक की बात को हृदय से स्वीकार करेंगे जो कि प्राकृतिक नियम है।

प्र०- ऐसा कब होगा ?

उ०- जब सुख शान्ति की प्रबल इच्छा देश के अन्तर उत्पन्न होगी। और यह तब होगी जब कि कष्ट क्लेशों की स्थिति का प्रयाप्त अनुभव हो जायेगा। यहां वर्षों की संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती बल्कि जीवन के अनुभवों की मर्यादा से अनुमान लगाया जा सकता है। क्या इस सिलसले में कुछ और भी पूछना चाहते हो।

प्र०- हां, अभी प्रश्न का एक पक्ष बाकी है आप ने इन्सान के क्रियात्मिक जीवन के प्रभावाधीन देश, जाती या घर को एक जैसा मानते हुए और ख्याल को बढ़ाते हुए वर्तमान और भविष्य की हालत के विषय में भविष्य बानी की है और बात भी ठीक मालूम होती है मगर यहां यह प्रश्न पैदा होता है कि जिस तरह अनुशासन हीन व्यक्ति के जीवन का अन्त ठीक नहीं होता, यद्यपि वो आरम्भ में यह महसूस करता है कि वो अच्छे मार्ग पर चल रहा है। इसी प्रकार जो स्वार्थ भावना देश और जातियों में काम कर रही है और जिस का हानिकारक परिणाम जर्मनी और जापान

के उदाहरण में प्रकट भी हो चुका है। मगर फिर भी वे इसे अपने उज्वल भविष्य का छुपा रूप ख्याल करते हैं। तो क्या इस का परिणाम देश और जाती के लिये हानी कारक न होगा अगर होगा, तो नियम ठीक है। और अगर नहीं होगा तो क्यों।

उ०- प्रश्न अच्छा है, मगर मैं इस का उत्तर राधास्वामी मत या संतमत की शिक्षा के नियम के आधार पर देना चाहता हूं। सुनो! संत मत में मन को अच्छी हालत या ख्याल की ओर लगाये रखने की शिक्षा दी जाती है। जिसका अभिप्राय यह है कि मन में दबी हुई शक्ति को उभरने या प्रकट होने या खुल खेलने का अवसर दिया जाये। जो इस का स्वभाविक कर्म है। अगर यह अच्छी हालत या अच्छे ख्याल की ओर ध्यान दे, तो जीवन को सुखमय बनाता है। संत मत मन के जज़्बा को मारने या दबाने की शिक्षा नहीं देता और न ही वो रुक सकता है वर्तमान प्रजा तन्त्र से देश के अन्तर पैदा होने वाले दुखद अनुभव के बाद नवयुवकों

का ध्यान अपने आप सुधार की ओर लगेगा। "ज़रूरत ईजाद की मां है"। जज़्वा ज़रूर ही भावमय होता है जो स्वभाविक है। क्योंकि यह जज़्वा उन्नति की ओर और सुधार के ख्याल के प्रभावाधीन होगा, इसलिये हानीकारक नहीं परन्तु लाभदायक होगा।

प्र०- फिर वही प्रश्न पैदा होता है कि देश में एक व्यक्ति का नेतृत्व नहीं होगा और न हो सकता है।

उ०- एक व्यक्ति के नेतृत्व से तुम्हारा जो आश्य है, वो ग़लत है। हां, नियम एक होगा और क्योंकि वो जज़्वा आवश्यकता के प्रभावाधीन प्रकट होकर अनुशासन और नीयम का पालन सिखायेगा, इसलिये हर व्यक्ति उस पर अचरण करेगा और परिणामस्वरुप संसार में सुख शान्ति का राज्य होगा।

प्र०- क्या यह स्थिति सदा रहेगी ?

उ०- नहीं, सदा कोई चीज़ नहीं रहती, जो बना हुआ है वो नाश होगा। यह स्थितियां भी आती जाती रहती हैं। इन्सान आप सदा एक अवस्था

में नहीं रहता। हस्ती का खेल इसी तरह होता रहता है और होता रहेगा। इससे अधिक मैं इस विषय पर प्रकाश नहीं डालना चाहता। नियम का संकेत कर दिया और बस।

प्र०- क्या आप वो नियम बता सकते हैं, जिस का अनुसरन करके इन्सान खुश रह सके?

उ०- कहने को तो कह देता हूं मगर मानेगा कौन? जब तक ठोकर नहीं लगती कौन सुनता है अच्छा, कह देता हूं, सुनो! वो व्यवहार दूसरों के साथ मत करो, जो तुम अपने लिये रुचिकर नहीं समझते।

प्र०- आप ही नहीं सब पूर्ण पुरुष की महिमा का गीत गाते हैं! इस के विषय में खोल कर प्रकाश डालें।

उ०- पूर्ण पुरुष, हस्ती के प्राकट्य की अन्तिम और पूरी कड़ी कहलाती है। अभिप्राय यह है कि वो तत्व अथवा हस्ती अपनी असली हालत में सत कहलाती है। जब वहां से एक धार पूर्ण रूप में निकल कर मानव रूप में प्रकट होती है, तो उसे पूर्ण पुरुष कहते हैं। यद्यपि प्रकट रूप,

अर्थात आकार के रूप में सब ही इन्सान हैं, फिर भी शारीरिक और मानसिक दृष्टि कोण से उनमें न्यूनता अधिकता होती है। किसी में किसी चेतनता की अधिकता होती है और किसी में किसी चेतनता का न्यूनता। यह सारे के सारे अपूर्ण पुरुष होते है। पूर्णता नाम है उस मानवीय रूप का, जिस में सत लोक से लेकर पिन्ड देश तक सारी चेतनतायें पूर्ण हों, कोई अधिकता, न्यूनता न हो। इसके अतिरिक्त शारीरिक अंग और मन के तमाम भाग पूर्ण हों। ऐसी हस्ती में जन्म से ही कोई कमी नहीं होती। ऐसा इन्सान ही चेतनताओं में पूर्ण रूप से खेल सकता है। जिनमें कमी होती है वे बाहर के सत्संग का सहारा लेकर पूर्ण होते हैं। जिस व्यक्ति को किसी चीज़ की इच्छा अथवा आवश्यकता होती है, उस का अभिप्राय यह है कि उसमें इच्छित वस्तु की कमी है। उदाहरण के रूप में एक आदमी पक्षपाती है, तुम उस मैं विचार की कमी समझो। एक आदमी में मोह है, दूसरे में घृणा, यह भी एक प्रकार की कमी है

और अवगुण है। एक दूरदर्शक है, दूसरा सदा मस्त रहना चाहता है! यह सब की सब अपूर्णता की अवस्थायें हैं। कारण यह कि इन को अन्तर की शक्तियों के केन्दर में कमी है। एक जन्म से हीजड़ा है, उसमें काम का केन्दर पूर्ण नहीं। दूसरा जन्म से अन्धा है, उस में आंख का केन्दर अपूर्ण है। एक ऐंचाताना है, उस का भी यही हाल समझो। साफ बात यह है कि जिस इन्सान के शरीर और मन के सारे अंग और केन्दर जन्म से पूर्ण होते हैं, वो पूर्ण पुरुष है। जिसके अंगों में जन्म से त्रुटी अथवा कमी है उसके विचारों में पूर्णता अथवा समता नहीं हो सकती। सुनो! एक व्यक्ति दूसरों को केवल एक उपाय की शिक्षा देता है, जिसका कि उसे ज्ञान है। यद्यपि वो उपाय उसके लिये ठीक है। इसलिए सिद्ध हुआ कि शिक्षा देने वाला पूर्ण पुरुष नहीं हैं और पूर्ण वो है कि जिसके शारीरिक और मानसिक अंग पूर्ण हों। ऐसा पुरुष ही दूसरों को उन की स्थितियों और शारीरिक व मानसिक बनावट

के अनुसार ठीक उपदेश दे सकता है और वही असली गुरु बनने के योग्य होता है। अपूर्ण भक्त सब को भक्ति बतायेगा, कर्मी अपूर्ण होने के कारण सब को कर्म की ओर लगायेगा, योगी अपूर्ण होने के कारण सब को योग की शिक्षा देगा यद्यपि यह ग़लत तरीका है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक बनावट भिन्न भिन्न होती है मगर पूर्ण इन्सान सब को एक रास्ते पर लाने का कभी यत्न न करेगा। शब्द नहीं मिलते, जो मेरे भाव का यथार्थ चित्र खैंच सकें।

अठारह कला संपूर्ण इन्सान को पूर्ण इन्सान कहा जाता है। अठारह चक्र इन्सान के अन्तर में हैं। जहां अनेक प्रकार के भान बोध रहते हैं। जो इन सब में पूर्ण रूप से खेल सकता है, वही पूर्ण इन्सान है। वो दूसरों को उनकी स्थितियों और बनावट के अनुसार शिक्षा देते हुए कमी को दूर कर देगा। ऐसा इन्सान जन्म से ही पूर्ण होने के कारण पूर्ण पुरुष कहलाता है। और जब कभी पृथ्वी घूमती हुई सत लोक के सामानान्तर होती है, तब वो प्रकट होता

है। वो न ही हिन्दू होता है और न ही मुसलमान और न ही किसी अन्य धर्म का अनुयायी, बल्कि मानव धर्म की शिक्षा देते हुए सच्ची एकता और भलाई की नींव रखता है। सत पुरुष राधास्वामी दयाल, कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब ऐसे ही महापुरुष थे। ऐसी माननीय हस्तीयों के विचार ही संसार में फैल कर सुख और शान्ति लाने का कारण होते हैं। ऐसी हस्ती युग की आवश्यकता के अनुसार समय समय पर प्रकट होती रहती है। मेरे ख्याल में अब जो हस्ती आयेगी, वो ऐसी ही होगी। वो मानव को मानवता सिखलायेगी क्योंकि इस समय देश में मानवता की आवश्यकता है। और सुनो ! पूर्ण पुरुष पक्षपात से ऊपर स्वतन्त्र विचार वाला मानव जाति का सच्चा हितैशी, निःस्वार्थ बेपरवाह और शाहों का शाह होता है। उसे न धन की लालसा होती है और न इच्छाओं का बन्दी होता है वो कौन होता है, देवताओं में भी शक्ति नहीं कि उसके गुणगान कर सकें। शब्द नहीं मिलते जो कुछ प्रकट करूं। बाणी साथ नहीं देती जो अधिक बताऊं। ऐसे महापुरुष को ही मालिके कुल का अवतार

कहा जाता है। बाकी आदमी ऐसी हस्ती का सत्संग करके पूर्ण और स्वतन्त्र विचार वाले बनते हैं और संसार में उस के मिशन को सफल बनाते हैं।

प्र०- स्वामी जी ने हिदायतनामा में लिखा है कि संत खुदा और ईश्वर को पैदा करने वाले हैं। क्या यह ठीक है।

उ०- हां, हां, बिलकुल ठीक, शत प्रति शत ठीक! ध्यान से सुनो और बात को समझो। हमारा असली रूप ज़ात (निज रूप) है। वह क्या है? अलख, अगम, अनाम, अरूप! उस से गुण या काल का प्राक्ट्य इस प्रकार होता रहता है जिस प्रकार दीप से धूआं। इश्वर, परमेश्वर आदि नाम हैं सामूहिक रूप में स्थूल पदार्थ के अथवा इसी तरह सामूहिक रूप में नाम हैं ब्रह्म पार ब्रह्म आदि सूक्षम पदार्थ के और कारण तत्वों के सामूहिक तत्वों का नाम सतलोक है। यह सब के सब हमारी ज़ात (निज रूप) से प्रकट होकर उसके आधीन रहते हैं बल्कि उस के समष्टि रूप हैं। इस दृष्टि से हमारी ज़ात इन के प्रकट अथवा पैदा करने वाली है, जिस का नाम संत है या

कोई और नाम रख लो, मगर आप उन समष्टि रूपों या गुणों से ऊपर हैं। अगर अब भी समझ नहीं आती तो कोई क्या कहे और क्या न कहे।

प्र०- पंथाइयों का प्रायः विश्वास है कि एक पूर्ण हस्ती के संसार से चले जाने पर उस की धार उसके गुरुमुख चेला में आ जाती है। क्या यह ठीक है ?

उ०- ऐ संसार के अन्ध विश्वासी और भोले भाले लोगो ! तुम असलियत से अनभिज्ञ हो। मैं सच्चाई को प्रकट करना चाहता हूं। सुनो ! धार से आशय वह ख्याल या मिशन है, जिसे ले कर पूर्ण पुरुष अथवा पूर्ण इन्सान इस संसार में प्रकट होता है। वह अपने संस्कार अपने प्रेमियों में छोड़ जाता है। छोड़ जाने के यह अर्थ नहीं कि वह कुछ दे जाता है वल्कि ख्याल स्वभाविक रूप से एक से निकल कर दूसरे में पहुंच जाता है। मगर लोग धार के अर्थ यह लेते हैं कि उस पवित्र विभूति की रूह उसमें प्रवेश हो जाती है। इस संशय और भ्रम का भी कोई ठिकाना

है ! क्योंकि वह ख्याल जो उस ने प्रकट किया था, दूसरे इन्सानों में सत्संग और संगत द्वारा प्रभावित हो जाता है, इसलिए वही ख्याल फिर शक्ति युक्ति के साथ प्रस्थितियों के अनुसार फैलता रहता है अथवा किसी न किसी रूप में फैलता रहता है। जितने लोग इस समय संतों या फकीरों की शिक्षा के प्रचार का काम करते हैं, और मैं जिन्हें पूर्ण इन्सान का रूप मानता हूं तमाम पूर्ण, उसी मिशन को लिए हुये हैं। कोई भी ऐसा नहीं जिस में किसी न किसी हद तक उस सच्चाई की धार या ख्याल शामिल न हो। हां यह ज़रूर है कि सब ने उसका एक एक अंग लिया हुआ है। मगर जब तक एक एक अंग न लिया जायेगा, भिन्न भिन्न प्रकृति के लोगों की भावनाओं का किस तरह मान हो सकता है !

अगर भक्त के साथ ज्ञान की बातें करोगे तो उसकी हानी हो जायेगी। इसी तरह ज्ञानी के साथ भक्ति की बातें करना ग़लती है आदि २। आप सोचो और समझो। मेरे ख्याल में जहां कहीं भी

सन्तों और फकीरों की शिक्षा की व्यवस्था है, हर जगह वही धार या ख्याल काम कर रहा है। वह ख्याल क्या है ? अगर साफ कहता हूं, तो लोग पक्षपाती और कपटी ख्याल करेंगे। क्योंकि लोग नाम और रूप के झमेले में इस तरह फंसे हुये हैं कि सार बात को सुनने के लिए तैयार नहीं। अच्छा सुनो ! वह ख्याल या धार है राधास्वामी ! अथवा मानवीय सुरत की सुख और शान्ति। इस के सिवा मेरी समझ में और कोई बात नहीं आई। मगर यह सुख और शान्ति बिना सत्य के रहस्य को समझे या सार भेद को ग्रहण किये न आयेगी और सार भेद सत्संग और निज अनुभव से प्राप्त होगा। निज अनुभव नाम है अपने बोधभानों के अध्ययन का ! जिस का दूसरा नाम अभ्यास है। यह अभ्यास कठिन नहीं मगर क्योंकि इन्सान के दिमाग़ में अनेक प्रकार के विचार और संशय भरे हुये हैं और काल अर्थात मन का ज़ोर है, इस लिये विशेष रहस्य समझ में नहीं आता। जैसा कि हज़ूर स्वामी जी महाराज फरमाते हैं।

काल मत जग में फैला भाई।
दयाल मत भेद न काहू पाई॥
वेद पुराण शास्त्र और सिमृत।
इन सब रुंधा मारग आई॥
ब्रह्मा विष्णु महादेव शक्ति।
दस औतार जाल फैलाई॥
ज्ञानी जोगी और सन्यासी।
ब्रह्मचार तपसी भरमाई॥
कहा कहूं सारा जग भूला।
कोई बिरले संत जनाई॥
पंडित भेख टेक में भूले।
सब भौ धार बहाई॥
साहेब कबीर और तुलसी साहेब।
दयाल मता इन आन चलाई॥
राधास्वामी खोल सुनाई।
मैं भी इन संग मेल मिलाई॥

इस लिये मेरी अपनी राय यह है कि भेद को समझो, किस का भेद ? हकीकत का, असलियत का ! जिस का नाम दयालमत है। राधास्वामी मत में शामिल होने के कारण मौज से जो जज़्बा मेरे दिल में पैदा हुआ और जिसे इस हिदायतनामा की

व्याख्या द्वारा व्यक्त किया गया मैं उसे समाप्त करता हुआ एक दो बातें पढ़ने वालों के सामने रखता हूं मगर शायद ही कोई आदमी मेरे इस रहस्य को समझे। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वो सतपुरुष राधास्वामी दयाल की ज़बान से कहता हूं :—

बंझा ने बालक जाया, जिन सकल जीव भरमाया।
अज्ञानी नाम कहाया, जिन माया सबल उपाया॥
ब्रह्मा विष्णु महेशा, नारद और सारद शेषा।
ऋषि मुनि और जोगी ज्ञानी, सब को उन ले धर खाया॥
वेद पुराण शास्त्र परमाना, दे दे जीवन अधिक भुलाया।
जीव अजान मर्म नहीं जाने, काल दुष्ट जंजाल लगाया॥
रहट घड़ि सम ऊंचे नीचे, भरमत फिरे कुछ चैन न पाया।
कोई ज्ञान कर ब्रह्म समाने, कोई उपाश बैराट समाया॥
कौंई करमी स्वर्गन में पहुंचे, कोई विषई नर्कन भोगाया।
मुक्ति पदारथ बढ़ कर जाना, ज्ञानी ऐसा धोखा खाया॥
कोई काल मुक्ति रस भोगा, फिर नर देही आन बंधाया।
कर्म करे जैसे देही में, फिर तैसा फल पाया।
करमी विषई और उपाशक, इन तो सदही चक्कर खाया।
काल जाल से कोई न बाचा, निज घर अपने काई न आया॥

तब सत पुरुष दया चित आई, कलि में संत रूप धर आया।
सब जीवन को दिया संदेसा, सत्तलोक का भेद जनाया॥

विरले जीव बचन उर माना, उन को ले सतपुर पहुंचाया ।
बहुतक जीव बंधे श्रुति सिमृत, संत बचन परतीत न लाया ॥
फिर फिर मांगें वेद प्रमाना, उन उस घर को नेति सुनाया ।
जब नहिं वेद वेद का करता, तब का भेद संत गुहराया ॥
उस घर मर्म वेद नहीं जाने, फिर क्यों कर परमान सुनाया ।
यह तो बात अगम गति न्यारी, संत बिना कोई नेक न गाया ॥
ताते संत बचन को मानो, यह परतीत परमान दृढ़ाया ।
संत बिना कोई मर्म न जाने, वेद कतेब कहाँ से लाया ॥
वह तो तीन गुनन में बरते, काल बचन कानून सुनाया ।

-: दोहा :-

वेद बचन त्रैगुन विषय, तीन लोक की नीत ।
चौथे पद के हाल को, वह क्या जाने मीत ॥

:- सोरठा :-

संतन का मत गूड़, बिना संत को जानई ।
राधास्वामी किया ज़हूर, माने सत संगी कोई ॥

पढ़ने वालो ! मैं देर से इस तलाश में था कि उस रहस्य और भेद को समझूं, जो इस सार बचन गद्य में वर्णन किया गया है, यद्यपि जितना भटका, उतनी ही खोज बड़ती गई, यहां तक कि बड़नी खतम हो गई । मैंने जो कुछ लिखा है वो भी बास्तव

में (शब्द नहीं मिलते) बंझा के बालक का विषय है! (गुम हो रहा हूं) वो चेतनता या ख्याल, जिसने यह सारा खेल मुझ से खिलाया, तुम से खिलाया और दुनियां से खिला रहा है और जिस के प्रभाव द्वारा लोक लोकान्तर, सूरज चांद, ऊंचे से ऊंचे लोक, अभिप्राय यह है कि सारा खेल कर रहे हैं, उस का नाम काल है। सुनो! असलियत और निज रूप से एक एक ख्याल निकल कर करोड़ों लोक लोकान्तरों की रचना हो रही है और उसी के प्रभावाधीन सारी दुनियां का खेल हो रहा है। वास्तव में जब यह ख्याल रूपी काल, बेख्याल रूपी अकाल में बदल जाता है तो शेष क्या रह जाता है, "चुप, मौन" और यही हमारी ज़ात या स्वरुप है। करोड़ों पुरुषों में कोई एक ऐसा होगा, जो इस रहस्य को समझेगा। जिस ने समझ लिया वो चुप हो गया। ऐ मालिके कुल, ज़ात, सत गुरु! तुझे नमस्कार है। क्योंकि अभी तक शरीर का थोड़ा सा अध्यास शेष है. इस लिए होश में आ कर, इस लिखने के पश्चात व्यवहारिक रीति से यह शब्द गाता हूं :—

भोग धरे राधास्वामी आगे।
लीन्हे बिजन अमी रस पागे॥

गगन शिखर पर बजा है नगारा ।
भोग लगाया राधास्वामी सारा ।।
काल कर्म को खा गये छिन में ।
जगीं नाम धराया पल में ।।
ऐसा भोग लगा नहीं कबही ।
राधास्वामी खा गये सब को अब ही ।।

जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है, मेरे निज अनुभव का प्रकट रूप है । यह सार बचन गद्य का अन्तिम शब्द है, जिस का अर्थ यह है कि यह जितने विचार उमंगें, भानबोध और आशायें थीं, सब समाप्त हो गईं । ख्याल बन्द ... ... शेष क्या है ? — — — चुप ।

राधास्वामी !

हिदायतनामा की व्याख्या समाप्त हुई

—※—

फिर क्या हुआ (पहली बार)

साध संग मोहे दीजिये. गुरु देवन के देव।
छिन छिन तुम में रम रहूं, यही तुम्हारी सेव॥

ऐ मेरे इस कुछ दिनों के स्वप्न रूपी जीवन में मिलने वालो! धाम के सत्संगी भाइयो! वर्तमान राधास्वामीमत के सतगुरुओ और आचार्यो! मैंने और अन्य सत्य प्रिय व्यक्तियों ने प्रायः इस जीवन में फकीरों के मत से बहुत आनन्द प्राप्त किया है। मैं बिना किसी पक्षपात के अपने अनुभव के आधार पर सच्चाई को प्रकट करता हूं क्योंकि मेरे मन के दुखों का अन्त हुआ और यह अन्त बाहर में सतगुरु परम दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी के पवित्र चरन कमलों से हुआ मगर अन्तर में इस का कारण सत्संगी सिद्ध हुए, जिन्हें दयाल जी ने मेरी प्रशंसा के पुल बान्धते हुए मुझ पर विश्वास लाने के लिये विवश किया और उन गुरु रूप सत्संगी भाईयों के कारण मैंने सार भेद को समझा, अगर आप मुझे

बग़दाद में आचार्य्य बना कर मेरा अनभव न बढ़ाते, तो हो सकता है मेरी चाह न मिटती ।

अगर किसी भाई को मेरे इस लिखने में सच्चाई मालूम होती हो, तो इसे प्रकट करने में मेरी सहायता करे और वो सहायता यह है कि इस शिक्षा का संसार में प्रसार करे और बस ।

"इस शिक्षा के फैलाने में क्या लाभ होगा" ? यह प्रश्न है, जो मैं अपनी आत्मा से करता हूं । जिसका उत्तर मिलता है कि यदि वर्तमान युग के नेता, देश और धर्म के आगू या मार्ग दर्शक इस सच्चाई को समझ लें, तो जितनी खैंचातानी इस समय बाणिज्य सम्बन्धी कामों में हो रही है सब की सब समाप्त हो सकती है।

हिन्दु, मुसलमान, सिख, इसाई, अभिप्राय यह है कि सब अनसमझी के प्रभाव से अपने अपने विचार और धार्मिक शिक्षा के प्रकाशन में धड़ाबन्दी के शिकार हो रहे हैं। जिस का परिणाम सामने है अर्थात दिनों दिन द्वेष बढ़ रहा है इसके विपरीत अगर हम सब नियम को समझ कर एक ही मानव धर्म के अनुयाई हो जायें, तो द्वेष का नाम तक न रहे ।

दूसरा लाभ यह है कि जिस प्राधीनता की बेड़ियों में हम सब जकड़े हुए हैं, टुकड़े २ हो कर सच्ची स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र विचार धारा, जीवन में सुख-मय परिवर्तन जाग्रत कर देती है। इसके विपरीत अगर हमें देश की स्वतन्त्रता मिल जाये तो भी आशा पूरी न होगी और जन्म जन्मान्तरों से मनों में बसी हुई परतन्त्रता का संस्कार दूर न होगा। हम वेद, कुरान शरीफ, और अन्य धार्मिक ग्रन्थ और ईश्वर, परमेश्वर, देवी देवताओं के अधीन हैं। यह अधीनता का संस्कार किसी न किसी रूप में हमारी अशान्ति का कारण बना रहेगा।

इसे दूर करने का केवल एक उपाय है, वो यह है कि सतगुरु दया अथवा उस हस्ती की सहायता से, जो उस के वचनों की ठीक समझ रखते हैं, पहले अपने मन में सच्ची स्वतन्त्रा का इष्ट कायम करें। इसके बाद दूसरे भाइयों को अपने जैसा समझते हुए स्वतन्त्रता का ख्याल दे कर आज़ाद ख्याल बनायें। फिर भाईचारा व प्रेम का ख्याल रखते हुए अपने विचार धारा वालों की सख्या बढ़ायें। इसके

अतिरक्त सत्संग से लाभान्वित होते रहें। तब हमारो शुभ आशा धीरे धीरे हमें अपने आप स्वतन्त्र बना देंगी।

दयाल फकीर !



फिर क्या हुआ (दूसरी बार)

हिदायतनामा की व्याख्या का पहिला प्रकाशन १९४० ई० में प्रकाशित हुआ था, जो जल्दी ही बट गया और मांग बराबर जारी रही। ऐडीटर "सारी दुनियां" ने दूसरा प्रकाश्न निकालने की इच्छा प्रकट की। इस समय में जिन महानुभावों ने पहले प्रकाश्न का अध्ययन किया था, बहुत से प्रश्न मालूम किये और इस ख्याल से कि अन्य लोगों को भी लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो, उन्हें उत्तरों सहित योग्य स्थानों पर लिख कर के कापी ऐडीटर "सारी दुनियां" के पास भेज दी ताकि इन अनमोल लेखों से विभूषित होकर सत्य के जिज्ञासुओं का ठीक मार्ग दर्शक बन सके।

प्र०-

क्या मिला तुझ को ऐ मेरी हस्ती फकीर?
क्या तू कहना चाहता है ऐ मेरे प्यारे फकीर!
पंथ में आ कर के तू ने क्यों ज़वान को बन्द किया?
खामोशी का रमज़ क्या है? मुझ को दे सचमुच बता!

उ०-

भरम या अज्ञान दिल में, जिसके बस सब कुछ किया,
भरम मिटा संशय गया है बस यही मुझ को मिला।
अब नहीं चिन्ता कोई दुविधा भी कोई है नहीं,
बेग़मी बेफिकरी का है सच्चा जीवन मुझ को मिला।
अब न चिन्ता मोक्ष की और न मुक्ती की है चाह ?
मज़हब, मिल्लत, सेवा, बन्दगी सब से पीछा छुट गया।
था जनून वह अपने दिल का जुस्तजू जिसकी थी नित.
जुस्तजू जाती रही अंजामे जुस्तजू यह हुआ।
प्रेम में देता सदा हूं सुनने वालो ; तुम सुनो,
जुस्तजू जाने न हरगिज़ सच्चे जब तक न बनो।

पढ़ने वालो। विश्वास करो कि मैंने जहां तक सम्भव था, सच्चाई के साथ खोज को। प्रश्न किया जायेगा कि किसकी ? मैं कहूंगा, सुख की, शान्ति की असलियत की और खुदा की आदि २। और इस तलाश के परिणाम को राधास्वामीमत की पुरानी बानी के सहारे नये ढंग पर सच्चाई के साथ प्रकट किया है, जिसे सत तुरुष राधास्वामी दयाल ने अपनी पोथी में लिखा है। फिर भी मुझे इस बात का दावा नहीं कि जो कुछ मैंने लिखा है वह ठीक है ! बल्कि यह

मेरे अनुभव में आया है। इसके विपरीत अगर किसी महानुभाव के अनुभव में इस से कुछ भिन्न आया हो, तो वह मुझे हिदायत कर सकता है। मैं हर्दिक श्रद्धा और प्रेम से उसकी बातों को सुनूंगा ! मैंने यही विनती चार वर्ष पहले भी हिदायतनामा और बारामासा की व्याख्या द्वारा की थी। लेकिन अभी तक किसी महानुभाव ने मेरे बिचारों के खण्डन में लेखनी नहीं उठाई बल्कि कुछ महानुभावों ने यह ज़रूर कहा कि आप के वचन सच्चे हैं, मगर इस सच्चाई की इस प्रकार आम प्रकाश्न से कई लोगों की हानी होती है। विशेष कर प्रारम्भक श्रेणी के सत्संगी भाइयों की ! मैं इस बात को मानता हुआ भी ग़लती करता हूं। क्यों ? इस लिए कि :—

गुरु ने चोला बदलया सिदक न हारे सिख।

समय बदल रहा है, स्थितियां बदल रही हैं, शिक्षा विधि बदल रही है। नया युग का आरम्भ है। इस समय इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही है कि राष्ट्रीय और धार्मिक नेता और जनता के सुधार के इच्छुक इन मतों की अच्छी समझ प्राप्त करें और ग़लत समझ या ग़लत रास्ते पर

चलने से अपने अनुयायियों को बचाएं। जिसके बुरे परिणाम धार्मिक झगड़ों के रूप में देश की बरबादी का कारण हो रहे हैं। प्रश्न किया जा सकता है कि क्या हिन्दु, मुसलमान, सिख, ईसाई, आर्य जिस धर्म के अनुयायी हैं वह ग़लत है ? मेरा उत्तर केवल यह है कि ग़लत तो नहीं, हां अधूरे ज़रूर हैं। मैं पूरे धर्म और पूरी शिक्षा उसे मानता हूं, जो मानव जाति को सच्चा सुख और शान्ति प्रदान करे। अगर धार्मिक संसार वर्तमान धर्मों की शिक्षा से सुखी और शान्त है तो मेरा कुछ कहना व्यर्थ है। वरना मैं यह ज़रूर कहूंगा कि वर्तमान धार्मिक और सुधारक शिक्षा प्रणाली इस समय के अनुसार अपर्याप्त और अधूरी है।

दोस्तो ! इन्सान इन्सान सब एक हैं, सब की प्राकृतिक आवश्यकताएें एक हैं। इस लिए नियमबद्ध धर्म भी एक ही होगा चाहे उसे प्रकट और वर्णन करने का तरीका अलग हो। हकीकत एक है ! मैंने जो समझा, प्रकट कर दिया। आगे जो मालिक की मौज !

आप का, दयाल फकीर !